चन्दामामा

माँ - बच्चों का मासिक पत्र

बुन्देलखण्ड में ठाकुर वंश का एक आदमी रहा करता था। उसको हर कोई "दीवान साहब" कहकर पुकारता था। उसको करने तो पड़ते थे फाके, पर ठाट थे रईसी के। कोई काम धन्धा भी न था। अपने वंश के बड़प्पन के बारे में डीङ्ग मारता और दूसरो का समय खराब करता।

दीवान साहब सड़क पर खड़े हो, एक सेठ से बातचीत कर रहा था कि दुर से एक गाड़ी आती दिखाई दी। गाड़ी में ऊपर तक चावल की बोरियों रखी हुई थी। वह गाड़ी उन्हीं की तरफ आ रही थी। गाड़ी को देखते ही दीवान साहब ने कहा- "अरे! वह कितना बड़ा हाथी है। हमारे दादा के पास इतना ही बड़ा हाथी हुआ करता था।"

"शायद आप गलत देख रहे हैं, दीवान साहब! हाथी नहीं आ रहा है, बल्कि चावल के बोरों से लदी गाड़ी चली आ रही है।" सेठ ने कहा।

"लगता है, आपकी आँखें खराब हो गई हैं, साफ हाथी जो दिखाई दे रहा है?" दीवान साहब ने कहा।

"माफ़ कीजिये, वह चावलों की ही गाड़ी है।" सेठ ने फिर कहा।

दीवान साहब ने भी जिद पकड़ ली। "अगर वह हाथी हुआ तो मैं आपका सिर धड़ से अलग कर दूँगा। गाड़ी हो तो आप मेरा सिर काट दीजिये। रही हम दोनों के बीच में यह शर्त?" दीवान साहब ने शान से मूँछे ऐंठते हुये कहा।

थोड़ी देर में गाड़ी पास आ गई।

"देखा दीवान साहब! आप हार गये हैं।" सेठ ने कहा।

बि. सुषमा कुमारी

"हाँ, आप हमारा सिर काट दीजिये।" दीवान साहब ने कहा।

"जाने भी दीजिये। इसकी क्या जरूरत है?" सेठ ने यह सोचकर कहा कि कम से कम अब तो ठाकुर अपने वंश की डीङ्ग मारना छोड़ देगा।

"नहीं, आप शर्त के मुताबिक हमारा सिर काट दीजिये। हमारे ठाकुर वंश के लोग कहे को नहीं मुकरते हैं।" दीवान साहब ने आग्रह किया।

"इस बारे में पञ्चायतदार से सलाह मशवरा करना अच्छा मालूम होता है।" सेठ ने सुझाया। दोनों पञ्चायतदार के पास गये। उसने यों फैसला दिया-

"यह बात तो सच है कि दीवान साहब के सिर पर सेठ का अधिकार है। परन्तु वे जब चाहें, उसको काट सकते हैं।"

यह फ़ैसला सुन सेठ सन्तुष्ट हुआ, परन्तु दीवान साहब ने एक और उलझन पैदा कर दी।

"यानी मेरे सिर के पालन-पोषण की जिम्मेवारी अब से सेठ पर है।"दीवान साहब ने कहा।

सेठ के सामने और कोई चारा नहीं था। दीवान साहब के सिर की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। यह कोई हल्का भार न था। दीवान साहब अपनी खानदान की शान निभाता हुआ दिन काटने लगा और इधर साहुकार का घर खाक होने लगा।

कुछ समय इस तरह बीता। सेठ ने इस आफत से पिण्ड छुड़ाने के लिये अपने दोस्तों से विचार विनमय किया। आखिर उन्हें एक तरीका सुझा। सेठ को उन्होंने वह बता भी दिया।

अगले दिन कोई आदमी गली में यह चिल्लाता हुआ आया-"हम नाक और कान खरीदते हैं।" सेठ ने उस आदमी को बुलाकर पूछा-"तुम क्या खरीदते हो?" "बाबू! हम मनुष्यों के नाक और कान खरीदते हैं।" उसने कहा।

"क्या दाम दोगे?" सेठ ने पूछा।

"अगर अच्छे खानदान के हुये तो नाक और कान के लिये पाँच सौ रुपये तक भी दे देते हैं।" उस आदमी ने बताया। सेठ ने दीवान साहब को लाकर कहा-"ये मशहूर ठाकुर वंश के हैं। फिरहाल इनका सिर मेरा है। इसलिये पाँच सौ रुपये देकर इनके नाक, कान काट लो।"

दीवान साहब घबरा गया।

"सेठ साहब ! यह ठीक नहीं है।" दीवान साहब ने कहा।

"क्यों ठीक नहीं है? यह सिर मेरी सम्पत्ति है। इतना रुपया बरबाद कर मैं जो इसको खिला-पिला रहा हूँ।" सेठ ने कहा।

"अच्छा होगा, अगर हम पञ्चायतदार पास जाकर उनकी सलाह लें।" दीवान साहब ने सुझाया ।

दोनों फिर पञ्चायतदार के पास गये।

"सेठ को जरूर आपके नाक, कान बेचने का अधिकार है। आपके सिर को उन्होंने इतने दिनों से पाला-पोसा भी तो है। इसलिये जितना खर्च आप पर सेठ ने किया है, आप को वापिस देना होगा।" पञ्चायतदार ने फैसला दिया।

दीवान साहब के मुँह से एक बात भी न निकली। जो कुछ सम्पति बाकी थी, उसे बेच वाचकर सेठ का कर्ज़ा चुका दिया, और गाँव छोड़कर कहीं चला गया।

चौथा चोर

एक देश में तीन पहुँचे हुये चोर रहा करते थे। वे यद्यपि रोज चोरी करते थे, तथापि उनको कोई पकड़ नहीं पा रहा था। उनका नाम लेते ही रईसों के दिल थम जाते थे। राजा ने उनको पकड़ने की ठानी। इसलिये वह हर रात चोर का वेष पहन उनकी तलाश में फिरता।

इस तरह एक एक करके कई रात्रियाँ गुज़र गईं। घूमते घूमते वह ऐसी जगह, अन्धेरे में पहुँचा, जहाँ चोर रहा करते थे। जब राजा वहाँ गया, तो वे यह सोच रहे थे कि चोरी कैसे की जाय।

नये चोर का देखते ही उन तीनों को कुछ सन्देह-सा हुआ। "तुम कौन हो? यहाँ किस काम पर आये हो?" उन्होंने पूछा।

"मैं भी चोर हूँ। यह सुन कि तुम इस इलाके के मशहूर चोर हो, मैं भी अपना हुनर तुम्हें दिखाने आया हूँ।" राजा ने कहा।

चोरों ने हँसकर पूछा-"क्या तुमने किसी के मुँह हमारी शक्ति के बारे में सुना है?"

"नहीं तो, कहो, मैं सुनना चाहता हूँ।" राजा ने कहा।

"चाहे कितना भी बड़ा ताला हो, मैं मिनटों मिनटों में एक तिनके से खोल सकता हूँ।" पहले चोर ने कहा।

"मैं जमीन पर हाथ से टोल-टटोलकर यह बता सकता हूँ कि पैसा कहाँ है।" दूसरे चोर ने बताया।

"अगर एक बार एक आदमी को देख लूँ, तो फिर चाहे वह कोई भी वेष पहने, मैं उसको तुरन्त पहचान सकता हूँ।" तीसरे चोर ने कहा।

श्रीमती डी. मञ्जुलता

"भला तुम में क्या हुनर है?"तीनों चोरों ने राजा से पूछा।

राजा को कुछ न सूझा कि क्या कहे। आखिर उसने यों कहा-

"अगर मैंने अपनी छोटी अंगुली नीचे की, तो किसी को भी यमलोक पहुँचा सकता हूँ; और अगर मैंने दूसरी अंगुली ऊपर उठाई, तो मौत के मुँह में पड़े हुये आदमी भी छोड़ दिये जाते हैं।"

यह सुन तीनों चोर बड़े खुश हुये। उन्होंने सोचा कि एक अक्लमन्द, ताकतवर, और चालाक आदमी उनका साथी हो गया है।

"अब कहाँ चोरी के लिये जाया जाय?" राजा ने पूछा।

"तुम्हारी मर्जी! जो जगह तुम चुनोगे, वहीं हम चलने के लिये तैयार हैं। तुम खुद देख लोगे हमारे कारनामे।" चोरों ने कहा।

"अच्छा, तो आज राजा के खजाने में चोरी की जाय।" राजा ने सलाह दी। चारों राजमहल की ओर चले। पहरेदारों की आँख बचाकर अन्दर घुस गये। दूसरे चोर ने जमीन पर हाथ रखकर कहा-"ख़ज़ाना इस तरफ है। सम्भलकर चलो।" चारों उस तरफ बढ़े। खजाने पर

बड़ा ताला लगा हुआ था। परन्तु उसको पहले चोर ने एक क्षण में तोड़ दिया। चोर अन्दर घुसे।

उसी समय राजा उनकी नजर बचाकर चला गया और जाकर उसने अपने सैनिक भेज दिये। तीनों चोर रङ्गे हाथ पकड़े गये। अगले दिन दरबार में उनकी सुनवाई हुई। सिंहासन पर राजा को बैठा देखकर तीसरे चोर ने कहा-"यह वहीं नया आदमी है, जो हमारे साथ चोरी करने के लिये आया था।"

जब सुनवाई खतम हुयी, तो राजा ने अपनी छोटी अंगुली नीचे की चोरों को फाँसी की सजा हो गई।

अगले दिन उनको फाँसी के तख्त पर ले गये। एक राज्य कर्मचारी ने आकर चोरों से पूछा-"तुम्हारी क्या आखिरी इच्छा है?"

"राजा से एक प्रश्न पूछना चाहते हैं, यही हमारी आखिरी इच्छा है।" चोरों ने कहा। राजा वहाँ गया।

"तुम मुझसे क्या प्रश्न पूछना चाहते हो?" राजा ने पूछा।

"महाप्रभू! हमने तो अपना हुनर आपको दिखा दिया है। आपने अपनी शक्ति के बारे में दो बातें बनाई थी। उसमें से आपने एक ही दिखाई है। दूसरी बात भी देखकर हम खुश होना चाहते हैं।" तीसरे चोर ने कहा।

राजा ने मुस्कराकर अपनी दूसरी अंगुली ऊपर की। तुरन्त सैनिक आये, और आकर उन्होने चोरों के बन्धन खोल दिये। वे फाँसी के सख्त पर से हटा दिये गये।

बाद में उन चोरों ने चोरी करना छोड़ दिया। वे राजा की सेवा करते उसी के आश्रय में रहने लगे।

दो हजार वर्ष पहिले चीन में सो पो ताऊ नाम का एक वृद्ध रहा करता था। वह प्रसिद्ध पण्डित था। परन्तु उसके पाण्डित्य को पहचानकर उसका आदर करनेवाला कोई न था।

चू राज्य का राजा भी एक बड़ा पण्डित था, और उसके बारे में यह बात फैली हुई थी कि वह पण्डितों का सम्मान करता था। ताऊ से उसके दोस्तों ने कहा कि वह भी वहाँ जाकर आदर प्राप्त करे। ताऊ मित्रों की सलाह टाल न सका। अपने काड़े वगैरह और जो कुछ पैसा पास था, उसने लिया, और चू राज्य की ओर पैदल चल दिया।

सैकड़ों मील जाना था। पहाड़ी में से रास्ता था। रास्ते में सर्दी भी आ गई। आराम के लिये वह एक गाँव में यान्ग-चियाऊ आयी नाम के व्यक्ति के घर गया।

आयी ने ताऊ का आतिथ्य सत्कार किया। यह जानकर कि ताऊ पण्डित है, आयी को और भी प्रसन्नता हुई। पर आयी भी कोई मामूली मनुष्य न था। उसके पास पुराने ग्रन्थों का अच्छा संग्रह देख ताऊ जान गया कि आयी भी बड़ा पण्डित है।

"सुना है, चू देश का राजा पण्डितों का बहुत सम्मान करता है। मैं उन्हें देखने जा रहा हूँ। तुम भी मेरे साथ क्यों नहीं चल पड़ते ?" ताऊ ने पूछा। आयी मान गया और उसके साथ चल पड़ा।

दोनों कुछ दूर साथ गये, फिर एक बड़ा भयङ्कर तूफान आया। लियाङ्ग पर्वत श्रेणी में वे एक बर्फीले तूफान में फँस गये।

श्री बादल कुमार बनर्जी

चू देश तक पहुँचने के लिये अभी चार दिन का और रास्ता था। परन्तु उस तूफ़ान में वे एक पैर उठाकर दूसरा रख नहीं पाते थे। आखिर ठण्ड के मारे मरने की नौबत आ गई। खासकर बूढ़े ताऊ की तो बुरी हालत हो गई। उसने आयी से यों कहा-

"बेटा! मेरा काम तो खतम हो गया है। कुछ भी हो, मैं चू देश पहुँच नहीं पाऊँगा। अगर तुमने मेरे गरम कपड़े पहिन लिये तो तुम आगे जा सकोगे, और राजा को देख सकोगे। मैं अपने गरम कपड़े देता हूँ। ले लो।"

परन्तु आयी ने न माना। "जाना है तो दोनों साथ चलें। नहीं तो ठण्ड से दोनों ही मरें।आपके गरम कपड़े लेकर आपकी मौत का में हरगिज़ कारण नहीं बनना चाहता।"आयी ने कहा।

"बेटा! तुम नौजवान हो। मेरा तो एक पैर कब्र में है ही। चू राजा अगर मेरा सम्मान करता है, तब क्या, अगर नहीं करता है, तब क्या? अलावा इसके, तुम मुझसे बड़े पण्डित हो।" ताऊ ने समझाया। पर आयी ने एक न सुनी।

बर्फ से बचने के लिये वे दोनों एक गुफा में घुसे।

"अगर कहीं दो-चार लकड़ी मिल गई तो आग जलाकर हाथ सेंके जा सकते हैं।" ताऊ ने कहा। आयी लकड़ियों की खोज में बाहर गया।

आयी के वापिस आते-आते, ताऊ ने अपने गरम कपड़े उतारकर गुफा में रखे, और बाहर बर्फ के गढ़े में वह कूद पड़ा। आयी जब वापिस आया, तो गुफा में सिर्फ गरम कपड़े ही दिखाई दिये। बाहर आकर देखा, तो बर्फ़ के गढ़े में ताऊ की लाश दिखाई दी।

उसके लिये प्राण न्योछावर करनेवाले ताऊ की बात सोच-सोचकर आयी बहुत दुःखी हुआ। उसने ताऊ के शव को गुफा में सुरक्षित रख दिया। उसके गरम कपड़े पहन वह सही-सलामत चू देश पहुँचा।

चू देश के राजा ने आयी के पाण्डित्य की प्रशंसा की और उसको राज-कवि के ओहदे पर नियुक्त कर दिया।

जब आयी का यों सम्मान हो रहा था, तो राजा ने उसकी आँखों में तरी पा उसका कारण पूछा।

"महाराज! आप मेरे पाण्डित्य का इतना आदर कर रहे हैं। ताऊ की उदारता के सामने मेरा पाण्डित्य किस काम का?"आयी ने कहा।

ताऊ के बलिदान की बात सुन राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। वह आयी के साथ उस गुफा के पास गया, जहाँ ताऊ का शव सुरक्षित रखा हुआ था। उसका अन्त्येष्टि- संस्कार किया, और वहीं पर उसकी एक समाधि भी बनवा दी।

बाद में ताऊ की समाधि चीन के पण्डितों के लिये एक तीर्थ स्थल बन गई।

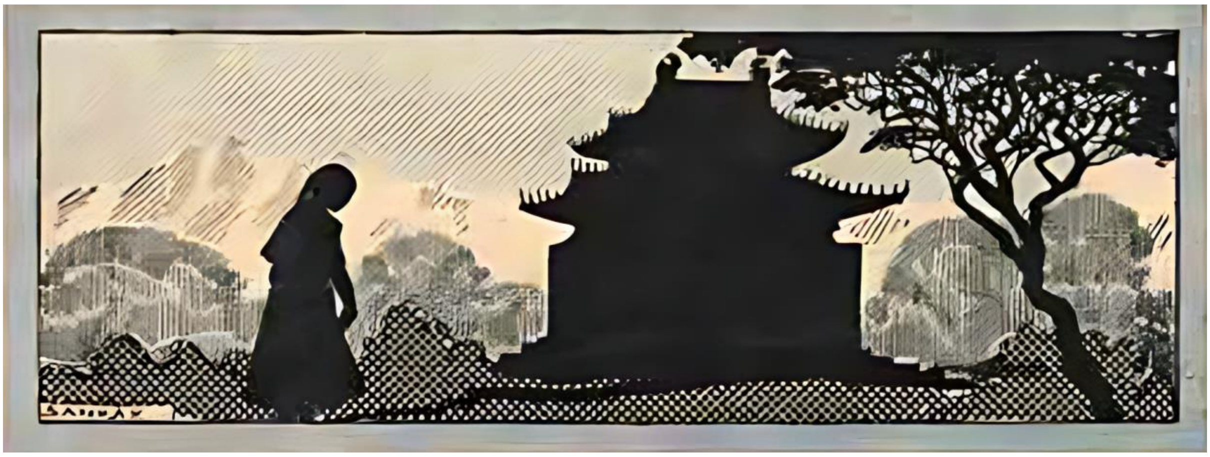

पहिले कमी बनारस में एक स्त्री रहा करती थी। उसे यह अभिमान था कि वह बहुत पतित्रता थी। पति के भोजन करने से पहिले वह स्वयं कभी भोजन न करती थी। जब कभी पति शहर से बाहर जाता तो वह इस फिक्र में पड़ जाती कि पति ने खाना खाया है कि नहीं। खाया है तो ठीक वक्त पर खाया है कि नहीं। इसी चिन्ता में वह खुद पानी पीकर उपवास करती।

उसको देखकर आस-पड़ोस की औरतें हँसा करती। परन्तु वह दूसरी स्त्रियों की निन्दा करती।

"तुम पातिव्रत धर्म के बारे में कुछ नहीं जानती हो। जब यह मालूम हो जाता है कि पति खाने के लिये नहीं आ रहे हैं तो खुद खा लेती हो। अगर एक दिन बिना खाये रह गयी, तो क्या होता है? पति शहर में हो, या न हो, स्वयं तीन बार नियम पूर्वक खाना खाती हो। दूसरे शहर में जाकर आदमी ने कुछ खाया है कि नहीं, इसकी फिक्र भला तुम्हें क्या होगी? मैं कभी वैसा नहीं कर सकती।" इस तरह से वह व्याख्यान झाड़ा करती।

लोगों को गुस्सा आया। "वह अपना ढोङ्ग हम पर भी क्यों लादना चाहती है?" उन्होंने आपस में कानाफूसी कर अपने पतियों से भी इस बारे में कहा।

उसका पति यह सब सुन न सका। पत्नी को उसने सबक सिखाने की ठानी। वह रोज़ भोजन के लिये देरी से जाने लगा। कई बार तो खाने के लिये जाता ही नहीं।

एक बार, यकायक, पत्नी को बिना बताये वह किसी दूसरे शहर में चला गया, और दो-चार दिन तक घर वापिस न आया।

श्री. सुशीला जुत्शी

इस वजह से उसकी पत्नी को काफ़ी दिक्कत हुई। वह अपने धर्म को रो-पीटकर निभाती जाती थी। उसने पति से वक्त पर भोजन के लिये आने को कहा।

एक दिन सबेरे भोजन के समय पति ने पत्नी से कहा-"आज अच्छी खीर बनाओ। खीर खाये बहुत दिन हो गये हैं।"

पत्नी बड़ी सन्तुष्ट हुई। उसको भी अच्छा खाये-पिये बहुत दिन हो गये थे। "भोजन के लिये देरी करना नहीं, ठीक वक्त पर जाना। " पत्नी ने पति से कहा। रसोई में जाकर उसने अपने मन पसन्द पकवान शाक, सब्जी, खीर वगैरह बनाई और पति की प्रतीक्षा करने लगी।

बहुत देर इन्तज़ार की, पर पति न आया। आखिर दोपहर के बाद वह आया।

"खाना तो कभी का तैयार हो चुका। आइये, भोजन के लिये आइये।" पत्नी ने कहा।

"जरा ठहरो, अभी तालाब में नहाकर आता हूँ।" कहता कहता पति बाहर चला गया। पर वह जल्दी वापिस न आया। पत्नी की भूख के मारे बुरी हालत हो रही थी। फिर पकवानों को सामने देखकर

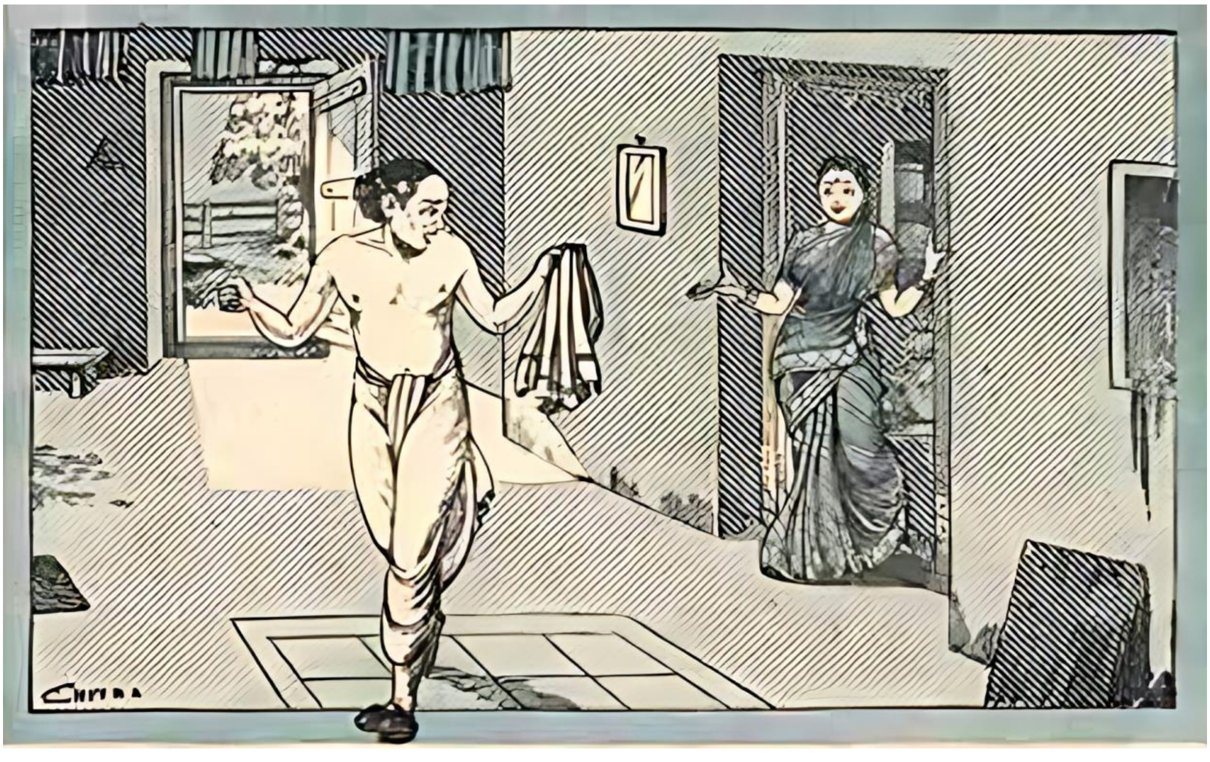

उसकी अवस्था और भी दयनीय हो गई थी।

ठीक दो घण्टे बाद पति वापिस आया। पत्नी खुश हुई। परन्तु अन्दर आते ही, उसकी आँखें मिच-सी गई, और वह कमरे में गिर गया। जब पत्नी ने पास जाकर देखा, तो पति का शरीर ठण्डा लगा। पत्नी ने सोचा कि पति मर गया है। अगर उसने रोना-धोना शुरू किया तो आस पड़ोस के लोग आयेंगे, और देख-दाखकर यह बतायेंगे कि वे मरे हैं कि नहीं। अगर सचमुच उनके प्राण चले गये तो इन पकवानों को सूँघने तक को नहीं मिलेगा। अगर खाना है, तो पहले ही खाया जाय।

पत्नी चुपके चुपके रसोई में गई, और अपने मन पसन्द पकवानों को पेट भर खा आई। जब वह हाथ धोकर आई, तो कमरे में उसका पति उसी हालत में पड़ा था।

तब वह धर्मपत्नी "अरे भगवान" कह छाती पीट पीटकर रोते-धोते लगी। पाँच दस आदमी इकठ्ठे हो गये। उन्होंने पूछा-"क्या बात है?"

"बनाये हुये पकवान खाये बगैर ही ले गया उन्हें भगवान।" वह चिल्ला रही थी। "अगर मैंने नहीं खाये, तो कम से कम तूने तो खा ही लिये हैं?" पति ने उठकर पूछा।

सब को जो कुछ गुजरा था, भली भाँति मालूम हो गया। पति के किये हुये धोखे के कारण पत्नी बड़ी शर्मिंदा हुई।

"और तुम तो हमें पातिब्रत धर्म पर व्याख्यान झाड़ा करती थी?" आस-पड़ोस की औरतें उसको चिढ़ाने लगों।

तब से उस स्त्री ने न पातित्रत्य धर्म पर व्याख्यान ही दिये, न दूसरी स्त्रियों की निन्दा ही की।

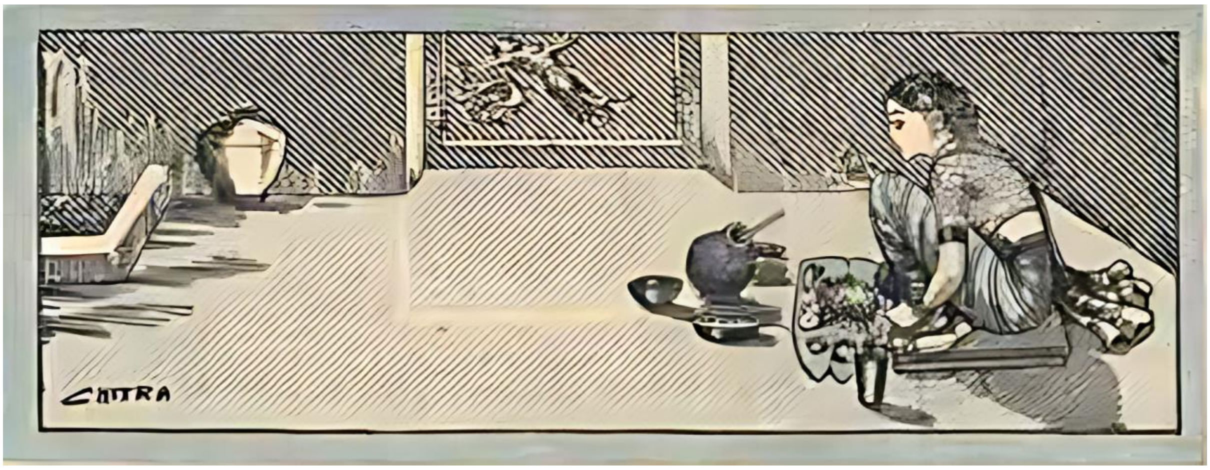

यह जानने के लिये समरसेन को बहुत समय न लगा कि उन पर कौन बाण वर्षा कर रहे थे। उन्हें गुहा कन्दराओं में प्रतिध्वनित होता जय-जयकार-"व्याघ्रदत्त की जय! व्याघ्र प्रान्त की जय!" निरन्तर सुनाई पड़ रहा था।

"ये व्याघ्रदत्त के सैनिक हैं। उनको हमारे छुपने की जगह मालूम हो गई है। वे हम पर अचानक हमला कर हमें मार देना चाहते हैं।" समरसेन ने अपने सैनिकों से कहा।

व्याघ्रदत्त के सैनिक चट्टानों की आड़ में से सतरसेन और उसके सैनिकों पर बाणों बौछार कर रहे थे। उस हालत में अगर जीते जी बाहर निकलना था, तो उनके सामने सिर्फ एक ही रास्ता था वह था, चट्टानों के पीछे पीछे छुपे छुपे उस प्रान्त से भाग निकलना।

सनरसेन के साथ उसके सैनिक भी, चट्टानों के पीछे से सामनेवाली सुरङ्ग की ओर धीमे धीमे रेङ्गने लगे। वह सुरङ्ग

कहाँ जायेगी? उसकी परली तरफ़ क्या है? ये प्रश्न उनको अभी सताते नहीं लगते थे। पहले उन्होंने व्याघ्रदत्त के फन्दे से बाहर निकलने में ही अपना श्रेय समझा।

आखिर सब मिलकर सही सलामत एक गुफा में पहुँचे। व्याघ्रदत्त के सैनिकों का शोर-शराबा धीमे धीने काम हो गया। समरसेन ने अनुमान किया कि वे उन्हें खोजते खोजते किसी और रास्ते पर चले गये थे।

तब तक दोपहर हो चुकी थी। परन्तु समरसेन इधर उधर ढूँढ़ता-ढाँढ़ता, लड़खड़ाता, उस काली गुफा में, आगे बढ़ने लगा। उसे गुफा की परली तरफ सूर्य की पतली रश्मि दिखाई दी। फिर थोड़ी दूर और चलकर वह गुफा के पार निकल गया।

समरसेन को अपनी ही आँखों पर विश्वास न हुआ। उसे लगा कि यह स्वप्न है या सत्य। ठीक सामने उसको शिवदत्त के बताये हुये खण्डहर दिखाई दिये। ऐसा लगता था, मानो कोई महानगर भूकम्प के कारण नष्ट हो गया हो। बड़े मकान टूटी फूटी अवस्था में- किसी की छत गिरी हुयी थी, तो किसी की दीवार- दिखाई दिये।

इसमें सन्देह न था कि ये खण्डहर वे ही थे, जिनको शिवदत्त ने तस्वीर में दिखाया था। शिवदत्त यहीं कहीं छुआ हुआ होगा। सनरसेन ने सोचा कि हिम्मत बाँधकर आगे चलना ही अच्छा होगा। उसके सैनिक भी आश्चर्य से उन खण्डहरों की तरफ देख रहे थे।

अब क्या किया जाय? वह अभी यह सोच ही रहा था कि उस सारे इलाके में शंखनाद और शोर सुनाई दिया। दूसरे क्षण, उसको ब्याघ्रदत्त पचास-साठ सैनिकों

के साथ खण्डहरों में से आता हुआ नज़र आया।

समरसेन ने अपने सैनिकों को सावधान किया, और स्वयं यह देखते लगा कि ब्याघ्रदत्त किस तरफ जाता है। और ब्याघ्रदत्त के हाव-भाव देखने से लगता था कि वह उनकी बात ही भूल गया हो।

वह ऐसे चल रहा था, मानों जिस काम को वह करने निकला था, वह कर लिया हो। उसकी चाल में घमण्ड था। चेहरे पर प्रसन्नता। सैनिक भी तालियाँ बजा बजाकर हँस रहे थे।

क्या ब्याघ्रदत्त को यह मालूम हो गया है कि शिवदत्त कहाँ छुपा हुआ है ? क्या उसने उसे पकड़ लिया है? सतरसेन को यह सन्देह होने लगा। परन्तु सैनिकों के साथ कोई भी बन्दी न था। सतरसेन ने सोचा कि हो सकता है कि ब्याघ्रदत्त को यह मान हो गया हो कि अपूर्व शक्तिवाला शाक्तेय का त्रिशूल कहाँ रखा हुआ है।

व्याघ्रदत्त टूटे-फूटे मकानों की बगल में अपने सैनिकों को लिये हुये चला जा रहा था। उसको देखने से लगता था, जैसे उसको मालूम हो कि वह कहाँ जाना

चाहता है। वह सैनिकों को रास्ता दिखा रहा था।

समरसेन चट्टानों के पीछे पीछे अपने सैनिकों को लेकर एक बड़े मकान के खण्डहर के अहाते में पहुँचा। वहाँ आधे घिरे हुये खम्भों के पीछे से वह व्याघ्रदत्त और उसके सैनिकों को देखने लगा।

ब्याघ्रादत्त, जो सैनिकों को आगे चलने का आदेश दे रहा था, एक जगह यकायक रुका और गम्भीर ध्वनि में अपने सैनिकों से कहने लगा-"व्याघ्रयोद्धाओ! आज वह समय आ गया है, जब हमारी मेहनत सफल होने जा रही है। मैने आप सब को वचन दिया था न कि आप में से एक एक को एक एक देश का राजा बनाऊँगा। मैं अपना वह बचन पूरा करूँगा। परन्तु अब आपको हिम्मत से एक काम करना होगा।"

"हम खतरनाक से खतरनाक काम करने के लिये तैयार हैं। बताइये, वह क्या काम है?" सैनिकों ने ज़ोर से पूछा।

व्याघ्रदत्त ने मुस्कुराते हुये कहा-"इन खण्डहरों में हमारी इच्छा पूरी होने जा रही है। वह देखो, आपको वह मकान दिखाई दे रहा है न? उसकी ड्योढ़ी गिर चुकी है और पत्थरों से रास्ता रुका पड़ा है। तुम वहाँ पड़े हुये पत्थरों को और खम्भों को हटाओ, और रास्ता ठीक करो। हम जिस अमूल्य चीज़ की खोज कर रहे हैं, वह इसी मकान में है, और उस मकान के लिये रास्ता इस ड्योढ़ी में से है।"

व्याघ्रदत्त का यह कहना था कि सैनिको न जाने कहाँ से उत्साह भर आया; वे हँसते, कूदते-फाँदते, शोर करते उस खण्डहर के पास गये। कई फावड़ों को

लेकर रास्ते में पड़े पत्थरों को खोद खाद कर एक तरफ करने लगे।

सैनिक इतने जोश से काम कर रहे थे कि उनको आनेवाले खतरे का भान भी न था। उस खण्डहर के टूटे हुये खम्भे, पत्थर एक तरफ को झुककर गिरनेवाले थे।

समरसेन दूर से यह सब देख रहा था। यह साफ था कि व्याघ्रदत्त की आज्ञा पालन करनेवाले किसी गिरते खम्भे के नीचे पड़ चकनाचूर हो जायेंगे।

व्याघ्रदत्त, कुछ दूर, एक तरफ खड़ा हो, पत्थरों को हटाते हुये सैनिकों को जोश दिला रहा था। उसके इधर उधर देखने से समरसेन को लगा कि उसको भी आनेवाले खतरे के बारे में मालूम था।

व्याघ्रदत्त जान-बूझ कर अपने सैनिकों को आफत में डाल रहा था। समरसेन ने अभी यह अनुमान किया ही था कि यकायक खण्डहर नीचे धड़ाम से ढह गया। गिरते हुये खम्भों के नीचे, चीखते-चिल्लाते व्याघ्रदत्त के कई सैनिक, देखते देखते मर गये। और जो बच-बचाकर बाहर निकल आये थे, घावों के कारण उनकी हालत बुरी हो रही थी।

इस घटना के घटने में उतनी देर भी न लगी जितनी कि आँख मींचने में होती है। अपनी जान बचाकर कुछ सैनिकों को ले भागकर व्याघ्रदत्त थोड़ी दूर जा खड़ा हुआ। यह देखकर उसके कान पर जूँ तक न रेंगी।

"ब्याघ्रेश्वरी की पूजा में शायद कोई त्रुटि रह गई है। इसी कारण इस ड्योढ़ी के सामने इतने सारे सैनिक बलि हो गये हैं। अब हमें कोई डर नहीं है, हिम्मत बनाये रखो।" कहकर व्याघ्रदत्त अपने बचे हुये सैनिकों को ढाढस बँधाने लगा।

सैनिक डर के मारे काँप रहे थे। परन्तु उन्होंने अपने सरदार का आश्वासन सुन अनुमति में अपने सिर हिला दिये। तब ब्याघ्रदत्त ने अपने हाथ में लिये हुये चित्र को दिखाते हुये कहा-

"अपूर्व शक्तिवाले शाक्तेय के त्रिशूल के बारे में आपसे कहने का मैने निश्चय किया है। उसके प्रभाव से हम लोग जो बच गये हैं, राजा महाराजा हो सकते हैं। जहाँ वह त्रिशूल रखा हुआ है, वह इस चित्र में साफ साफ दिखाया गया है। हाथियों के जङ्गल में, विष वृक्ष से सौ गज दूर, मृत वीरों की समाधि के नीचे, गुरुद्रोही के अस्थि-पञ्जर में शाक्तेय का त्रिशूल रखा हुआ है।"

यह बात सुनते ही छुपे हुये समरसेन के शरीर में, आश्चर्य और भय से फँपकँपी आ गई। जिस अपूर्व शक्तिवाले त्रिशूल के लिये, इस मन्त्रिकों के द्वीप में इतनी हत्यायें, व युद्ध चल रहे हैं, क्या यह आखिर इस दुष्ट व्याघ्रदत्त को मिल जायेगा?

तब हमारा कर्तव्य क्या है? यह प्रश्न समरसेन के सामने रह रहकर आने लगा। शिवदत्त का क्या हुआ? क्या वह जानता है कि त्रिशूल कहाँ है? क्या अपने साथ के सैनिकों से व्याघ्रदत्त का मुकाबला करना अच्छा होगा या न होगा?

समरसेन कुछ भी निश्चय न कर पाया। अगर एक बार व्याघ्रदत्त के हाथ में वह त्रिशूल आ जाता है, तो उसका मुकाबला करना किसी के बस में न होगा। एकाक्षी और चतुनेत्र, जो अपने को मन्त्र-विद्या में चतुर समझते हैं, इसके सामने उनको सिर झुकाना होगा। धन-सम्पदा से भरी हुई नाव, और उसकी रखवाली करनेवाली नाग कन्या, इसके हाथ में आ जायेंगी।

इस आपत्ति में सिवाय चतुर्नेत्र के, उसकी सहायता करनेवाला कोई न था। पर चतुर्नेत्र को उसकी इस बिपत्ति के बारे में मालूम कैसे हो? नाग कन्या को पाने के लिये वह जमीन-आसमान एक कर रहा है। पर वह शाक्तेय के अपूर्व त्रिशूल के बारे में जानता है कि नहीं? अगर वह त्रिशूल मिल जाय, तो क्या उसकी सहायता से, यह द्वीप तो क्या, क्या सारा संसार जीता जा सकता है?

समरसेन इसी उधेड़बुन में था कि उसे ब्याघ्रदत्त की कर्कश ध्वनि फिर सुनाई दी।

"कल शुभ दिन है। रविवार है, अमावस्या है। इसलिये आज की रात हम यहीं विश्राम करेंगे। कल रात को, ठीक एक बजे हमें हाथियों के जङ्गल में प्रवेश करना होगा।" व्याघ्रदत्त सैनिकों से यह कहकर, पास वाले एक चट्टान पर बैठ गया। सैनिक भी अपने अपने हथियार नीचे रख उसकी चारो तरफ घेरा डालकर बैठ गये।

व्याघ्रदत्त की बातों ने सनरसेन में आशा की चिङ्गारी लगाई। उसके सामने अभी चौबीस घण्टे का समय था। इतने समय में, चाहे जैसे भी हो, व्याघ्रदत्त को मारना होगा। मगर फिलहाल उसको, और उसके सैनिकों को आराम लेना ही अच्छा था।

यह सोचकर, समरसेन झट पीछे की ओर मुड़ा। उसके मुड़ते ही वह जिस खम्भे के सहारे खड़ा हुआ था, वह यकायक धड़ाम से नीचे गिर गया। बड़ी आवाज़ हुई।

आवाज़ सुनते ही वह घायल शेर की तरह उठ खड़ा हुआ। सैनिक भी अपने अपने हथियार लेकर खड़े हो गये। व्याघ्रदत्त की दृष्टि ठीक सीधे उसी खण्डहर की ओर गई, जहाँ समरसेन छुआ हुआ था।

(अभी और है)

एक था राजा। वह बहुत ऐश और आराम से रहता था। उसकी प्रजा भी सुखी थी, पर राजा अक्सर यह सोचा करता कि वह उतना सुखी नहीं है, जितना कि वह हो सकता था।

"मुझ से अधिक क्या कोई सुखी है इस राज्य में?" यह प्रश्न राजा कभी कभी अपने कर्मचारियों से पूछता।

"महाराज! यह असम्भव है। इस राज्य में तो अलग, इस संसार में कोई ऐसा नहीं, जो आपसे अधिक सुखी हो।" वे जवाब दिया करते।

राजा को यह जवाब सुनकर तसल्ली नहीं होती। जब वह वेश बदलकर, पासवाले गाँव में घूम-फिर रहा था, तो एक झोपड़ी में से बेले और गाने की भीनी भीनी आवाज़ आ रही थी।

"हो सकता है कि वह गानेवाला आदमी गरीब ही हो। परन्तु वह मुझ से अधिक बेफ़िक्र नज़र आता है। मैं उसकी तरह मस्त हो क्यों नहीं गा पाता हूँ?" यह सोच राजा ने झुककर उस झोंपड़ी में झाँका।

झोंपड़ी में एक टूटा-फूटा दिया जल रहा था। राजा की उम्रवाला कोई व्यक्ति चटाई पर बैठ, बेले की तार उनका उनकाकर बड़े मजे में, गला फाड़ फाड़कर गा रहा था। राजा को देखते ही उसने कहा-"आओ भाई, अन्दर आकर बैठो।"

राजा अन्दर जाकर बैठ गया। "लगता है, बड़े मजे में हो। क्या तुम्हें कोई फ्रिक नहीं हैं? जिन्दगी कैसे चल रही है?" राजा ने पूछा।

"मुझे तो कोई फिक्र नहीं है। रोज सवेरे शहर चला जाता हूँ। गली गली

श्री बल्लभदास परमार

फिरता हूँ। बर्तनों की मरम्मत करता हूँ। कलाई करता हूँ। दो-चार पैसे कमा लेता हूँ। जो शाक-सब्जी चाहिये, खरीद लेता हूँ। घर आकर खाना बनाता हूँ। खा-पीकर, जब तक नींद न आये, तब तक मज़े में गाता हूँ। न मैं किसी का पालन पोषण करता हूँ, न कोई मेरा पालन-पोषण करता है। पैसा जमा करने की भी धुन मुझ में नहीं है।"

अगले दिन राजा ने आज्ञा निकलवाई कि गली में घूमने-फिनेवालों से बर्तन पर कलाई लगवाना मना है। जो कोई अपने बर्तनों की मरम्मत या उन पर कलाई करवाना चाहे, वे राज-महल में करवा सकते हैं।

उस दिन गानेवाले को शहर में एक दमड़ी भी न मिली। जब वह गली में धूम रहा था तो एक घर के सामने, कोई बड़ा आदमी लकड़ियाँ चीर रहा था। गानेवाले ने उससे जाकर कहा-"महाराज! आप क्यों तकलीफ करते हैं? मैं लकड़ियाँ चीरे देता हूँ। आप मेरी मेहनत के लिये मज़दूरी दिलवा दीजिये।"

"मज़दूर नहीं मिले। इसलिये खुद ही यह काम करना पड़ा।" कहते-कहते उस आदमी ने गानेवाले के हाथ में कुल्हाड़ी थमा दी। तब से वह गानेवाला रोज शहर आता और जिनको लकड़ियाँ चिरवानी होती, उनकी लकड़ियाँ चीर देता, और जब उसके काफी पैसे बन जाते, तो घर चला जाता।

उसकी हालत अब कैसी थी यह जानने के लिये वेष बदलकर, राजा एक दिन शाम को उसकी झोंपड़ी की ओर गया। फिर वही मस्त गाना सुनाई दिया। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने झोंपड़ी

में घुसकर जो कुछ गुज़रा था, सो मालूम कर लिया।

गानेवाले की मस्ती का कारण शारीरिक परिश्रम है या कुछ और, यह जानने के लिये राजा को एक उपाय सूझा।

अगले दिन सवेरे राज-सैनिकों ने गानेवाले की झोपड़ी में जाकर कहा कि उसे जल्लाद बुला रहा है। बिना कुछ कहे सुने, गानेवाला उनके पीछे-पीछे जल्लाद के पास गया।

"हमें हुक्म मिला है कि तुम्हें राज सैनिक के रूप में नियुक्त करें। तुम झट जाकर दरबार में अपना काम करना शुरू कर दो।" जल्लाद ने कहा।

दरबार में जाकर गानेवाले ने फ़रियाद की कि उसको नौकरी की जरूरत नहीं है। मगर किसी ने उसकी न सुनी। उसके बहुत रोने-पीटने पर भी उसको राज-सैनिक की वर्दी, पगड़ी, तलवार, वगैरह दे दी गई।

गानेवाले को माहवारी वेतन मिलता था। रोज मज़दूरी न दी जाती थी। उसे कुछ न सूझता कि क्या करे। एक दिन उसने एक व्यापारी के पास जाकर अपनी

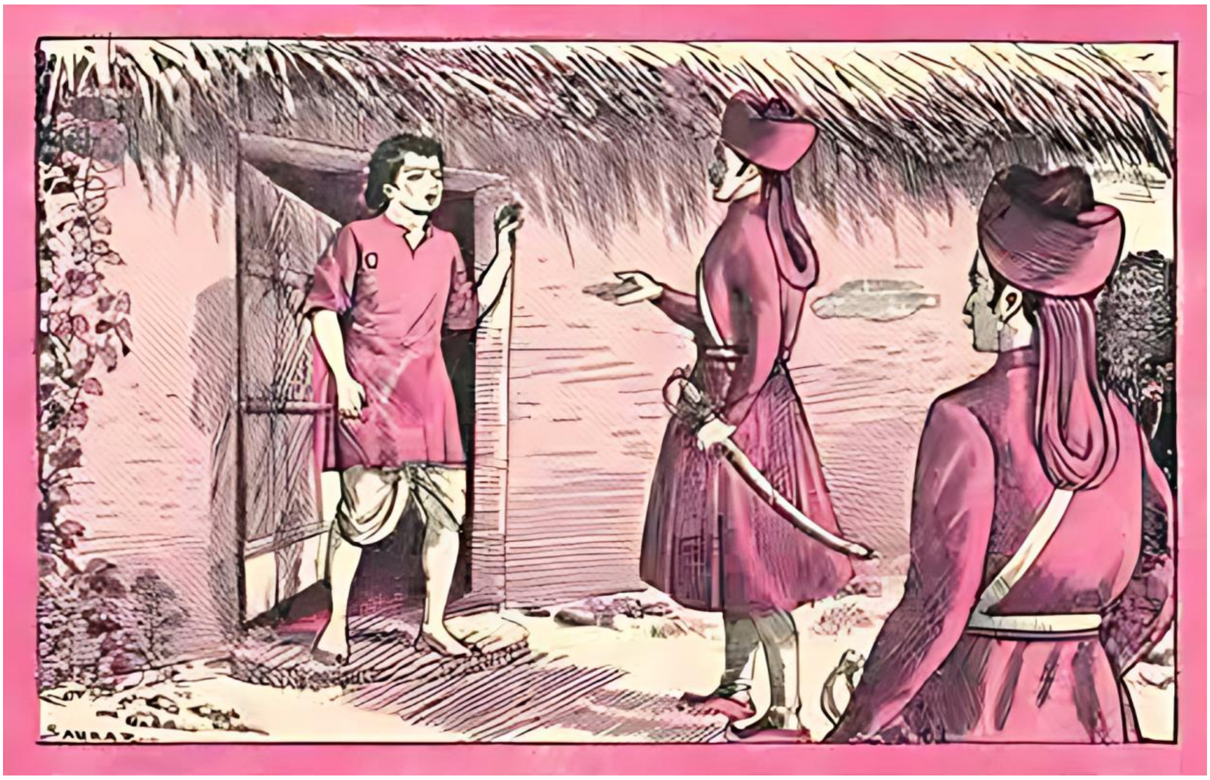

"यह अब भी मस्त है। में चूँकि प्रजा को दण्ड देता हूँ, शायद इसीलिये मुझे सुख नहीं है। इससे भी किसी को दण्ड दिल्वाना चाहिये।" राजा ने सोचा।

अगले दिन उसको बध्यस्थल पर जाने की आज्ञा हुई। जब वह पहुँचा तो वहाँ एक कैदी था। उसकी बगल में एक जल्लाद था। कैदी का शिरच्छेद देखने के लिये चारों ओर लोग बैठे हुये थे।

"उस कैदी को राजा ने मृत्युदण्ड दिया है। तुम अपनी तलवार से इसका सिर काटो।" जल्लाद ने गानेवाले को आज्ञा दी। गानेवाले को कुछ न सूझा। लकड़ी की तलवार से आदमी का सिर कैसे काटा जाय?

"बाबू ! मुझे नहीं मालूम, इस आदमी ने क्या अपराध किया है? क्यों आप मुझे यह काम करने के लिये कहते हैं? किसी और से कहिये।" वह जल्लाद से विनति करने लगा।

"उसके अपराध से तुम्हें क्या मतलब हैं? राजा का हुक्म है कि तुम उसका सिर

तलवार गिरवी रखी और उससे समझौता कर लिया कि जब कभी उसको पैसे की जरूरत हो, वह दे दिया करे, और वह महीने के अन्त में तनख्वाह मिलने पर सब चुका दिया करेगा।

परन्तु बिना तलवार के खाली म्यान का पता लग सकता था। इसलिये उसने एक तरीका सोचा। बढ़ई के पास जाकर उसने एक लकड़ी की तलवार बनवाई और उसे म्यान में रख इधर उधर घूमने लगा। कुछ दिन बाद राजा वेष बदलकर फिर उसकी झोपड़ी की तरफ गया। झोपड़ी में से अब भी गाना सुनाई पड़ रहा था।

"काटो।" जल्लाद ने तरा गुस्सा होते हुये कहा।

अब कोई रास्ता न था। गानेवाले ने आँखे मींचा और हाथ जोड़कर जोर जोर से प्रार्थना करने लगा-"भगवान में एक भयङ्कर काम करने जा रहा हूँ। यदि यह कैदी निर्दोषी हो तो मेरी तलवार को लकड़ी का बना दे, और मुझे पाप से बचा।" उसने झट म्यान में से तलवार निकाली।

गानेवाले ने जो तरवार बाहर निकाली, तो वह लकड़ी की थी। इसलिये लोग उसको देख यकायक आश्चर्य में पड़ गये। फिर लोगों में से आवाज़ आने लगी-"कैदी निर्दोषी है, कैदी निर्दोषी है, उसे छोड़ दिया जाना चाहिये।" जल्लाद भी हक्का-वक्का हो इधर-उधर देखने लगा। इस बीच में लोग आगे बढ़ आये। कई गानेवाले के पैरों पर पड़ कहने लगे-आप महापुरुष हैं। अवतार हैं।"

कुछ लोग जाकर कैदी के बन्धन खोलने लगे।

देखते देखते यह बात सारे शहर में फैल गई कि कैदी निर्दोष है और राज-सैनिक महात्मा है। जल्लाद लाचार हो, भागा भागा राजा के पास गया, और उसको सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा को आश्चर्य हुआ और सन्देह भी। उसने गानेवाले को अपने पास बुलाया और सच बात पूछी। गानेवाले ने सच सच बता दिया।

राजा ने उसे काफी धन दिया और कहा-"तुम्हें अब तङ्ग न करेंगे। तुम जैसे जीना चाहो, जीओ। हम तुम्हारे रास्ते में नहीं आयेंगे।" उसने गानेवाले को जाने के लिये कहा। तब राजा जान गया कि जो अपने पैरों पर खड़े होकर जीना चाहता है, उसे कोई फिक्र नहीं होती।

किसी जमाने में प्रयाग का राजा प्रदीप था। उसके दरबार में अनेक पण्डित रहा करते थे। उनमें से कई पीढ़ियों से दरबार में पण्डित के रूप में चले आते थे। उनमें से एक का नाम था, बद्रीप्रसाद।

बद्रीप्रसाद के पिता पितामह, पुरखे प्रसिद्ध पण्डित थे और प्रयाग राजा के दरवार में ही रहते आये थे। परन्तु बद्रीप्रसाद केवल पण्डित पुत्र था, यानी मूर्ख। क्योंकि वह सालों से सुनता आ रहा था, इसलिये उसको कुछ श्लोक जरूर याद थे, पर उसमें दुनियावी ज्ञान कतई न था। वह परम मूर्ख था। पर राजा को यह बात न मालूम थी।

परन्तु दूसरे दरबारी पण्डितों ने बद्रीप्रसाद की हालत आसानी से जान ली थी। उनको यह अच्छा न लगता था कि उस जैसे मूर्ख को भी उनके साथ उच्च पद दिया जाय। इसलिये उन्होंने राजा से कहा- "महाप्रभू! बद्रीप्रसाद में लोक-ज्ञान विलकुल नहीं है, यह निरा मूर्ख है। उसे दरबार में एक ओहदा देना दरबार की प्रतिष्ठा पर धब्बा है। आप स्वयं परीक्षा करके देख सकते हैं।"

राजा प्रदीप चकित हुआ, क्योंकि बद्रीप्रसाद का पिता दिग्गज पण्डित था। उसकी मृत्यु के बाद उसका स्थान बद्रीप्रसाद को मिला था।

माथे पर विभूति, गले में रुद्राक्ष माला, कन्धे पर शाल देखकर, बद्रीप्रसाद सचमुच पण्डित ही लगता था। यह देखने के लिये कि वह वास्तव में मूर्ख है कि नहीं, एक दिन राजा ने भरे दरबार में उससे यों पूछा-

"पण्डित प्रवर। कई आदमियों को मैंने कछुवे पकड़ते देखा है। यह मुझ को

श्री द्वारकानाथ आचार्य

समझ में नहीं आया कि उनको कछुओं से क्या फायदा होता है।"

यह सुन बद्रीप्रसाद ने बिना किसी हिचकिचाहट के कहा-"महाराज! कछुवे का दूध बहुत ही स्वादिष्ट होता है। उसके बालों से काश्मीरी दुशाल बुने जाते हैं। "

राजा को आश्चर्य हुआ। दरबार में कुछ लोगों को हँसी आयी । यह मालूम हो गया कि बद्रीप्रसाद मूर्ख है। राजा ने फिर पूछा-

"पण्डित पुत्र ! मैंने सुना है कि एक स्वरगोश गरजता हुआ शेर पर कूदा। क्या यह बात सच हो सकती है?"

"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है महाराज। शेर आखिर खरगोश के लिये आहार-वस्तु ही तो है। शास्त्रों में यह भी लिखा है कि खरगोश उछलकर शेर पर चढ़ जाता है, और उसके कुम्भ पर चोट कर उसको मारकर खा लेता है।"

इस बार दरबारी और जोर से हँसे। राजा को भी हँसी आ गई।

"खैर, पण्डित पुत्र। मैंने एक बार जलते हुये तालाब को देखा। उस तालाब में मुझे एक मछली भी न दिखाई दी। क्या वजह हो सकती है?" राजा ने पूछा।

"तालाब जल रहा था न! इसलिये तालाब की मछलियाँ पासवाले पेड़ों पर चढ़ गई होंगी।"

"महाराज! अब तो आप ने स्वयं देख लिया है। इस मूर्ख को तुरन्त दरवार में से निकलवा दीजिये।" पण्डितों ने कहा।

"इतनी अच्छी तरह से हँसानेवाले को दरबार से हटाना अच्छा नहीं लगता। मैं आज से बद्रीप्रसाद को विदूषक नियुक्त करता हूँ।" राजा ने कहा।

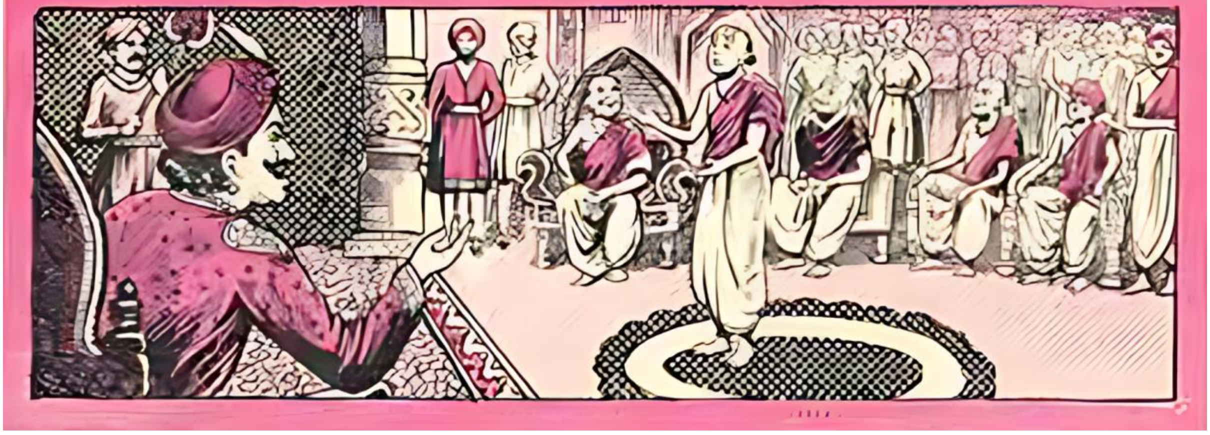

जब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था, बोधिसत्व एक गाँव में, एक अछूत के घर पैदा हुआ। उसने एक विचित्र मन्त्र सीखा और उस मन्त्र के बल पर आम पैदा किया करता।

रोज एक डण्डी कन्धे पर रख, जङ्गल में, आम के पेड़ के पास जाया करता। सात गज़ दूर खड़ा हो मन्त्र जपा करता। टहनियों पर मन्त्र-जल छिड़का करता। देखते देखते, उस पानी के पड़ते ही टहनियों पर पत्ते लग जाते। मौर आता, आम लगते, और टप टपकर नीचे गिरने लगते।

यह बात सुनन्द नाम के ब्राह्मण लड़के को मालूम हो गई। उसने सोचा, चाहे कुछ भी हो, उस अछूत के पास जाकर वह मन्त्र सीखेगा।

एक बार जब बोधिसत्व जङ्गल से आ रहा था, तो सुनन्द ने उसकी डण्डी, फलों का गठ्ठर उसके हाथ से ले लिया, और उठाकर घर में रख आया। तब से वह श्रद्धा और भक्ति से बोधिसत्व के घर में सब तरह के काम करने लगा।

दिन गुज़रते गये। एक बार बोधिसत्व ने अपनी पत्नी से कहा-"यह लड़का, मालूम है, क्यों हमारे पास यों खुशामद कर रहा है? वह चाहता है कि जैसे तैसे आम बनाने का मन्त्र मुझसे सीखे। परन्तु उसका स्वभाव अच्छा नहीं है। इसलिये यदि वह मन्त्र सीख भी गया, तो भी ज्यादा दिन वह फायदा न उठा सकेगा।"

सुनन्द क्योंकि घर का हर काम कर देता था, इसलिये बोधिसत्व की पत्नी का दिल पिघल गया। उसने पति से कहा -"यह लड़का घर का हर काम कर रहा है। अपने लड़के से भी बढ़कर

हमारी सेवा सुश्रूषा कर रहा है। मन्त्र उसके पास रहे या न रहे, कम से कम आप तो उसे सिखा दीजिये। बाद में उसके भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह होगा।" पत्नी पति से बार बार कहती। आखिर मन्त्र सिखाने के लिये बोधिसत्व मान गया।

तब बोधिसत्व ने सुनन्द को बुलाकर कहा-"यह एक बहुत ही विचित्र मन्त्र है। इसकी सहायता से तुम्हें धन मिलेगा और यश भी। परन्तु अगर कोई पूछे कि तुमने यह मन्त्र किससे सीखा तो तुम रहस्य नहीं बताना। अगर तुमने रहस्य बता दिया, तो उसी क्षण इस मन्त्र का प्रभाव दूर हो जायेगा।" फिर उसने सुनन्द को मन्त्र सिखा दिया।

मन्त्र सीखकर सुनन्द घर चला गया। आम बनाकर उन्हें बेचकर आराम से रहने लगा।

सुनन्द के आमों में से, न जाने कैसे एक आम राजा के हाथ लगा। राजा ने चकित होकर लड़के को बुलवाया। "इस बेमौसम में इतनी सुगन्धिवाले और रसवाले आम तुझे कहाँ मिले? ये भगवान के बनाये हुये हैं, या आदमी के?" राजा ने पूछा।

तब सुनन्द ने जवाब दिया-"महाराज! मुझे ये फल किसी ने नहीं दिये हैं। मुझे एक महामन्त्र मालूम है। उसकी महिमा से ही मैं ये आम बना लेता हूँ।" राजा ने स्वयं अपनी आँखों से उस मन्त्र की महिमा देखनी चाही। सुनन्द ने कहा कि उसके सामने ही वह आम पैदा कर दिखायेगा।

अगले दिन सुनन्द राजा और उसके दरबारियों को लेकर बाग में गया। सुनन्द ने मन्त्र जल टहनियों पर छिड़का। तुरन्त पेड़ पर से आम टपकने लगे।

यह चमत्कार देखकर राजा और उसके दरबारियों के आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने आमों को चुनकर खा लिया। राजा ने सुनन्द को खूब इनाम दिया।

उसके बाद राजा ने पूछा-"इस महामन्त्र को सिखानेवाला महापुरुष कौन है?" सुनन्द को कुछ न सूझा कि क्या जवाब दे। अगर सच कहता है, तो मन्त्र का प्रभाव चला जायेगा। उसे गुरु की बात याद आ गई। मगर जो मन्त्र कण्ठस्थ है, उसका प्रभाव कैसे जायेगा? यह सोच उसने राजा से उस महापुरुष का नाम बता दिया। तब राजा ने उसका परिहास करते हुये कहा-"तो तूने इस महामन्त्र को एक अछूत से सीखा था। संसार में ऐश चाहने के लिये तू अपने धर्म मार्ग से विचलित हो गया?"

सुनन्द सिर झुकाकर घर चला गया। कुछ दिन बीत गये। फिर एक बार काशी राजा को आम खाने की इच्छा हुई।

सुनन्द हमेशा की तरह, पेड़ से सात गज़ दूर खड़े होकर मन्त्र जपने की कोशिश करने लगा। परन्तु उसे मन्त्र याद न आया। उसने फिर कोशिश की, मगर इस बार भी मन्त्र याद न आया। कई बार कोशिश की, पर वह सफल न हुआ। वह जान गया कि क्योंकि उसने अपने वचन का पालन नहीं किया था, इसलिये मन्त्र का प्रभाव चला गया है।

सुनन्द ने राजा से कहा-"क्योंकि मैंने अपने गुरु के उपदेश का पालन नहीं किया है, इसलिये मन्त्र का प्रभाव चला गया है।" यह कह सिर नीचा कर वह घर चला गया।

डरपोक युवराज

बहुत समय पहले फारस में एक युवराज रहा करता था। वह बहुत योग्य था। पर चन्द्रमा की तरह उसमें भी एक कमी थी। वह बड़ा डरपोक था। जब वह बीस साल का हुआ, तो उसके पिता की मृत्यु हो गई। युवराज के पट्टाभिषेक के लिये तैयारियाँ शुरू हो गई।

उस देश में एक परम्परा थी। सिंहासन पर बैठने से पहिले युवराज को शेर से लड़ना पड़ता था। इसलिए युवराज के लिये मन्त्री एक शेर को पिञ्जरे में रखकर पाल रहे थे। जब डरपोक युवराज उस शेर के बारे में कभी सोचता, तो उसके हाथ-पैर ठण्डे पड़ जाते। इसलिये जिस दिन उसकी शेर से लड़ाई होनी थी, उससे एक दिन पहिले ही आधी रात के समय अपने घोड़े पर चढ़ वह देश छोड़कर चला गया।

युवराज तीन दिन बाद, एक और देश में पहुँचा। उस देश में, जङ्गल, पहाड़, नदी, वगैरह बहुत सुन्दर थे। एक जगह उसको भेड़ों का झुण्ड चरता हुआ दिखाई दिया। पास ही एक गड़रिया आराम से मज़े में गाना गा रहा था।

युवराज ने उस गड़रिये से परिचय कर लिया। गड़रिया युवराज को अपने मालिक के यहाँ ले गया। उसका मालिक एक समृद्ध किसान था। उसके यहाँ बैल, भैंस, सभी कुछ थे। उसने युवराज को अच्छी तरह भोजन खिलाकर पूछा-"आर कौन हैं? आप कहाँ के हैं? कहाँ जा रहे हैं ?"

"महाशय ! मैं एक युबराज हूँ। में अपना नाम न बताऊँगा। परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर मुझे अपना देश छोड़कर भागना पड़ा।" युबराज ने कहा।

श्री अतुल सफलानी

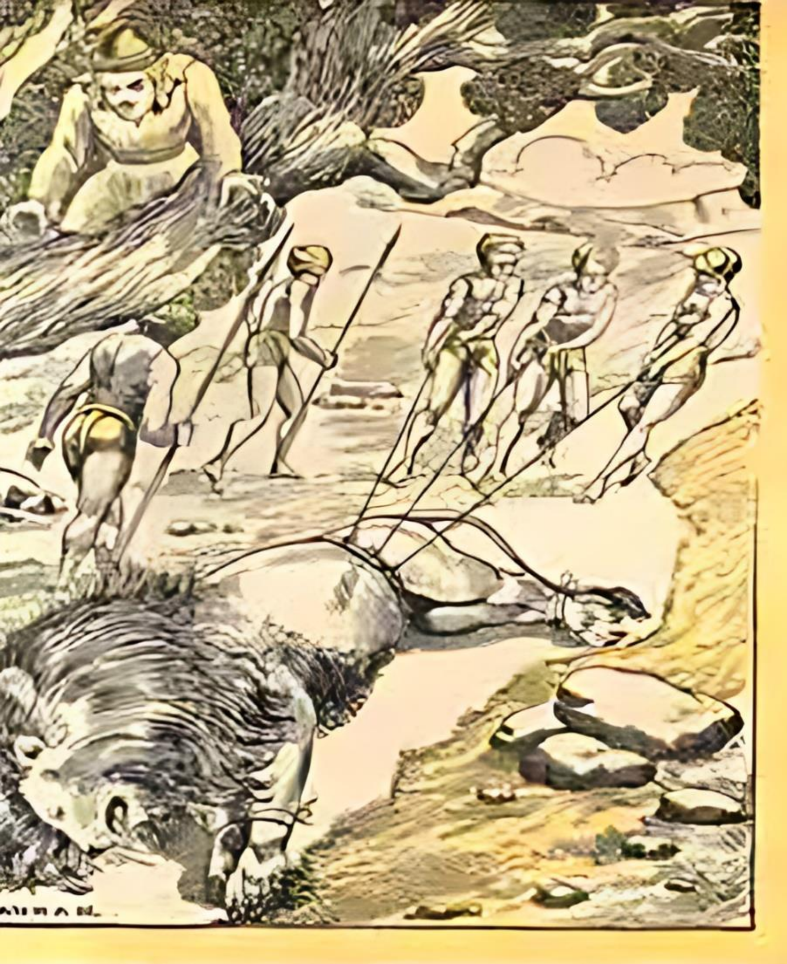

"खैर, आप हमारे घर में ही रहिये। आपको यहाँ कोई असुविधा न होगी। यह मेरी जिम्मेवारी ठहरी। आपको फिर कभी न कभी तो अच्छे दिन लौटेंगे ही।" किसान ने कहा। युवराज ने किसान का आतिथ्य स्वीकार कर लिया। वह रोज गड़रिये के साथ घूमा करता। कभी पहाड़ों पर निकल जाता, कभी झरना देखने चला जाता। गड़रिये का गाना सुना करता। रोज़ जल्दी जल्दी गुज़रते जाते थे।

एक बार युवराज भेड़ों के झुण्ड के साथ एक पहाड़ी झील के पास गया। वहाँ कई और गड़रिये भी अपने भेड़ों के झुण्डों को हाँक लाये थे। वह जगह बड़ी मनोहर थी। भेड़ों के झुण्ड इधर उधर निश्चिन्त हो चर रहे थे। गड़रिये खुशी में गा रहे थे।

उसी समय दूर से आवाज़ सुनाई दी- "शेर! शेर! पकड़ो।" जिस तरफ से आवाज आयी, उस तरफ गड़रियों ने भागना शुरू किया।

"आओ, चलो शेर को मारें।" युवराज के गड़रिये दोस्त ने उससे कहा। परन्तु युवराज को काटो तो खून नहीं। उसके मुख से बात तक न निकली। गड़रिये ने दो क्षण प्रतीक्षा की, फिर वह भी शेर का शिकार करने चला गया।

जब अङ्ग जरा काबू में आये, तो युवराज अपनी जान बचाने के लिये एक पेड़ पर चढ़ गया, और पत्तों के झुरमुट में छुपकर बैठ गया। कुछ देर में गड़रिये, हँसते हँसते वापिस चले आये। मारा हुआ शेर उनके साथ था।

यह देख युवराज शर्मिन्दा हुआ। मरे हुये शेर को देखकर ही उसके हाथ-पैर सूखे पतों की तरह काँप रहे थे। जब भेड़ों के झुण्ड चले गये, तो वह पेड़ पर से उतर

आया। वह अपना मुँह उन गड़रियों के सामने कैसे दिखाये? इसलिये वह एक और रास्ते पर चलने लगा।

चलते चलते तीन दिन बाद वह एक जङ्गल में पहुँचा। वहाँ उसको कुछ सैनिक और उनके तम्बू दिखाई दिये। सैनिको के सरदार ने युवराज की बड़ी खातिरदारी की। सरदार को युवराज ने अपना नाम नहीं बताया। पर जैसे उसने किसान को बताया था, वैसे ही सरदार से भी उसने कहा कि वह एक युवराज था, जिसे अपने देश को छोड़कर आना पड़ा था।

"आप हमारी फौज में एक सिगही के रूप में रहिये। आपको किसी तरह की कमी न होगी।" सरदार ने कहा युवराज भी उसकी बात मान गया।

युवराज को यह फौजी जीवन भी पसन्द आया। जब एक दिन सिपाही थोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहे थे, तो उन्होंने युवराज को भी बुलाया।

"आप सब लोग कहाँ जा रहे हैं?" युवराज ने पूछा।

"पासवाले पहाड़ों में शेर हैं। उनका शिकार करने जा रहे हैं। बहुत दिनों से

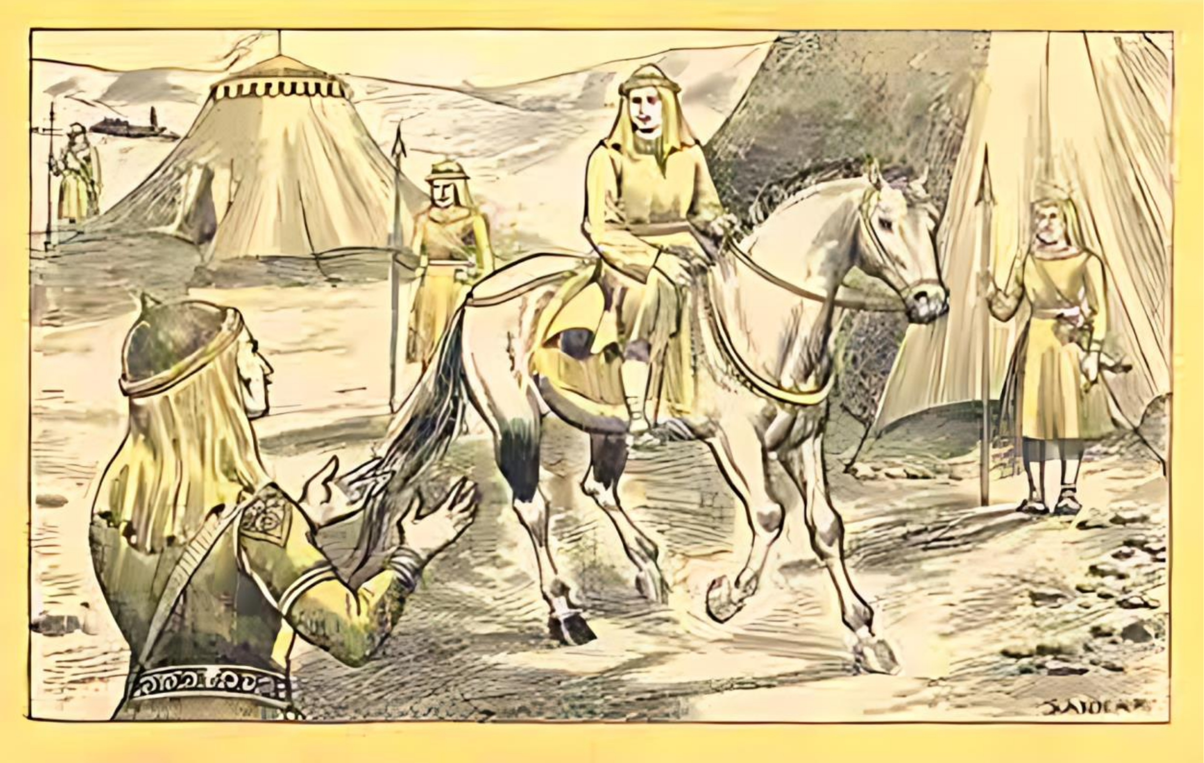

लड़ाई नहीं हो रही है और लड़ाई के न होने पर आदमी की हिम्मत भी पस्त हो जाती है। उसका शिकार ही सबसे अच्छा इलाज है।" सैनिकों ने कहा।

युवराज उनके साथ गये बगैर न रह सका। परन्तु उसका दिल डर के मार धक धक कर रहा था। युवराज आत्म-रक्षा के लिये भी शेर से लड़ न पाता था, पर ये सैनिक खोज-खाज कर उसका शिकार कर रहे थे। यह देख युवराज को वे सैनिक अति साहसी नजर आये। ज्योंही सैनिक पहाड़ों में घुसे, तो युवराज ने अपने घोड़े को एक और रास्ते पर बढ़ा दिया। वह कुछ दिन बाद एक बड़े नगर में पहुँचा। भाटों से यह जान कि वह एक देश का युवराज है, उस देश के राजा ने उसको अपने महल में निमन्त्रित किया। उसका उसी तरह सम्मान किया, जिस प्रकार एक युबराज का किया जाता है। उसने उसको अपना अतिथि बना लिया, और कहा जबतक उसका भाग्य फिर न चमके, वह वहीं रहे।

उस राजा की एक लड़की थी। वह सुन्दर थी और अक्लमन्द भी। कहीं ऐसा न हो कि युवराज को कहीं फ़िक्र सताने लगे, वह उसका दिल बहलाने लगी।

उस दिन शाम को भोजनादि के बाद जब युवराज और राजकुमारी आपस में बातचीत कर रहे थे, तो कमरे के बाहर से एक भयङ्कर आवाज सुनाई दी। युवराज ने पूछा-"यह आवाज़ क्या है?"

"मेरा काला नौकर अङ्गड़ाइयाँ ले रहा है।" राजकुमारी ने कहा।

युवराज ने सोचा कि राजकुमारी के "काले नौकर" से मतलब शायद नीग्रो से

था। एक मनुष्य के, और वह भी एक नौकर के इस प्रकार अङ्गड़ाई लेने से राजकुमारी को गुस्सा न आता देख युवराज को बड़ा आश्चर्य हुआ।

फिर राजकुमारी ने कहा-"सोने का समय हो गया है, जाकर सोइये। मुझे भी नींद आ रही है।" उसने उठकर किवाड़ खोला। तब झट युवराज का दिल थम सा गया। किवाड़ के पीछे एक बड़ा काला शेर बैठा हुआ था।

"शेर, शेर" युवराज भयभीत हो चिल्लाने लगा।

"डरिये मत! क्या आपको नहीं मालुम कि अगर आपने अपना डर दिखाया, तो जङ्गली जानवर हमला करते हैं? यह मेरा पालतू शेर है। यह कुछ नहीं करेगा। हमेशा मेरे पीछे पीछे ही फिरता रहता है।" कहती कहती राजकुमारी शेर का सिर सँवारने लगी।

पर रात को युवराज एक क्षण भी न सोया। उसने मालूम कर लिया कि उसकी हालत भय के कारण बुरी थी, न कि शेरों के कारण। गड़रियों ने शेर मारा था, सिपाहियों ने शेर का शिकार खेला था,

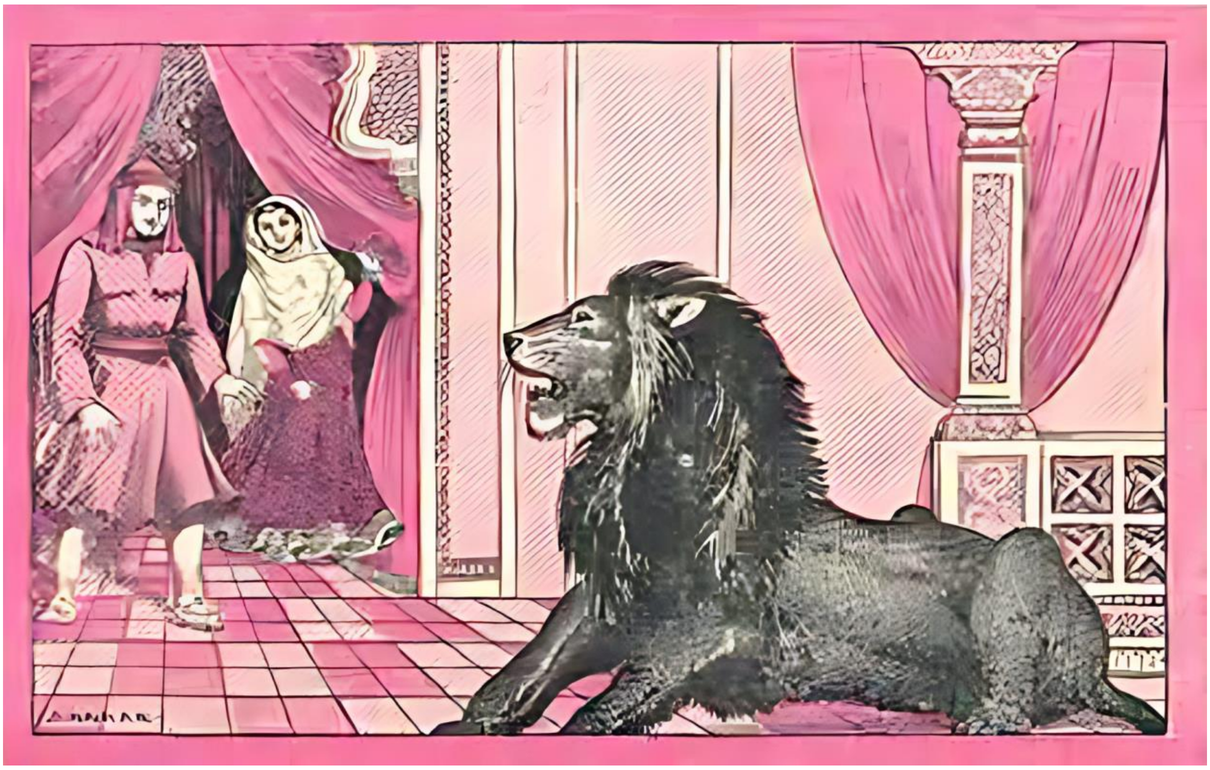

राजकुमारी शेर स्वयं पाल रही थी। उन्हें "भय" का रोग नहीं है, जबकि उसे है। बस इतना ही भेद है। भय न हो, तो शेर तो अलग, कोई भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

जब उसको यह बात मालूम हो गयी, तो पौ फटने से पहिले अपने घोड़े पर चढ़ वह अपने देश को चला गया। मन्त्री, राज-बन्धु आदि, जो उसका ठिकाना नहीं जान पाये थे, उसको देखकर बड़े सन्तुष्ट हुये।

"मैं शेर से लड़ूँगा। पबन्ध कीजिये।" युवराज ने कहा। अगले दिन युवराज के लिये सिंह युद्ध का इन्तजाम किया गया। एक कमरे में युवराज तलवार निकालकर खड़ा हो गया। उस कमरे के दरवाजे पर शेर का पिञ्जरा लाकर रखा गया।

पिञ्जरे के खोलते ही शेर गरजता हुआ कमरे में कूदा। युवराज न हिला, न डुला। शेर उसके चारों ओर घूमा, और उसी की बगल में बैठकर उसका हाथ चाटने लगा। वह पालतू शेर था। यह बात मन्त्रियों ने युवराज को न बताई थी। युवराज ने अपने साहस का परिचय दिया। उसके बारे में अब किसी को सन्देह न था। परम्परा भी पूरी हो गई थी।

तुरन्त पट्टाभिषेक के लिये निमन्त्रण पत्र भेजे गये। किसान, गड़रिया, जङ्गल में ठहरे हुये सेनापति, सैनिक, राजा, और उसकी लड़की को भी निमन्त्रण भेजा गया।

जब सब युवराज के लिये अपने भेंटों की घोषणा कर रहे थे, तब राजा ने कहा-"मैं और कोई भेंट तो नहीं लाया हूँ; मैं अपनी लड़की को ही लाया हूँ। उसको स्वीकार कीजिये।"

युवराज राजकुमारी से विवाह कर बहुत दिनों तक सुख से राज करता रहा।

प्रत्युत्पन्नमति

पहले दण्डकारण्य में शेरों का बहुत डर था। वे आते-जातों को मार दिया करते, और उनके धन आदि को लेकर गुफा में छुपा दिया करते थे।

दण्डकारण्य के पास एक गाँव था। उस गाँव में एक नाई रहा करता था। होने को तो वह गरीब था, पर बहुत ही चुस्त, चालाक, और हिम्मती था। क्योंकि शेर दिन में सोते हैं, इसलिये उसने सोचा कि दिन में जङ्गल जाकर उनके मारे हुये लोगों का रुपया-पैसा क्यों न खोजा जाय? एक दिन नाई ने अपनी पेटी बगल में रखी। उस्तरा भी लिया, ताकि मुसीबत में काम आ जाय। वह जङ्गल में गया। थोड़ी दूर जाने पर, पेड़ के पीछे से एक शेर सामने आया।

नाई प्रत्युत्पन्नमति तो था ही। देखते ही, निडर हो उसने कहा-"आहा! तू अब मिल गया है? मैं तेरे लिये ही देख रहा था। घबराना मत। मैं तुझे मारूँगा नहीं। तेरी मूँछे राजा को चाहिये। सिर्फ़ मूँछे काटूँगा। राजा मुझे इनाम देगा।" शेर डर गया।

"बाबू! मेरी मदद करो। अगर मेरी मूँछे ही न हो, तो मुझे पूछेगा कौन? जो राजा तुम्हें देंगे, वह में ही दिये देता हूँ।" शेर ने उससे मिन्नत की।

"खेर, जाने दो। तू इतनी मिलत कर रहा है। जो कुछ तू चाहता है, वही तू कर।" नाई ने कहा। शेर उसको एक गुफा में ले गया और उसने वहाँ उसे पैसों की थैली दिखाई। नाई उस थैले को लेकर अपने रास्ते पर चला गया।

श्री के. आर. अरविन्द

जब नाई थैली खोलकर पैसे गिन रहा था, तो वहाँ एक लकड़हारा आया। नाई ने जो कुछ गुज़रा था, उसे कह सुनाया। वह भी शेरों का पैसा हथियाने के लिये अपनी कुल्हाड़ी लेकर जङ्गल में पहुँचा।

जब वह घने जङ्गल में गया, तो उसे भी एक शेर दिखाई दिया।

"अरे हाँ, तो मिल गया? जरा ठहर तो तेरा सिर काटकर में राजा को अगर भेंट दूँगा, तो मुझे बहुत इनाम मिलेगा।" कहते हुये कुल्हाड़ी लेकर लकड़हारा शेर पर लपका। शेर डर गया।

"बाबू! मेरे प्राण बचा। राजा जो इनाम देगा, मैं तुझे उससे ठीक दुगना दे दूँगा।" शेर गिड़गिड़ाया।

"अच्छा, तो देखें, कितना देता है। चलें।" लकड़हारे ने कहा।

शेर उसको अपनी गुफा में ले गया और उसको गहने जेवरों का एक ढेर दिखाया। लकड़दारा उन गहनों का एक गट्ठर बाँध घर ले गया।

यह वृत्तान्त सुनते ही, नाई को फिर लालच हुआ। उसने लकड़हारे से कहा-"मामा! इस तरह एक एक शेर को डराने से हमारा काम न चलेगा। अगर हमने सब शेरों को डरा दिया, तो सात पीढ़ियों तक हमें गरीबी न सतायेगी। तुम क्या कहते हो?"

लकड़हारा नाई के समान हिम्मती न था। पहिले तो वह डरा, परन्तु नाई के ढाढस दिलाने पर वह मान गया। दोनों मिलकर दूर जङ्गल में गये, और पेड़ों पर चढ़कर शेरों की इन्तज़ार करने लगे। इधर शेरों ने एक सभा बुलाई।

"दो आदमियों ने दो शेरों को डरा- धमकाकर उनका धन हथिया लिया है।

क्या हमें मनुष्य से डरना चाहिये? अगर मनुष्यों से हमारा मुकाबला किया जाय तो हम कितने शक्तिशाली हैं। कितने भयङ्कर है!" नौजवान शेर गरजे। परन्तु एक शेर ने इस प्रकार कहा-"भाइयो! आप कभी इस भ्रम में न रहिये कि हम ही इस दुनियों में सब से अधिक क्रूर, भयङ्कर, और शक्तिशाली हैं। धन-लोलुप मनुष्य से बढ़कर इस संसार में अधिक क्रूर और कोई नहीं है। इसलिये मेरी यह सलाह है कि हम अब से अकेला घूमना-फिरना छोड़ दें। झुण्ड झुण्ड में ही हमें मिलकर रहना चाहिये। एकता ही हमारी रक्षा करेगी।"

सभा के समाप्त होने पर, शेर उसी तरफ आने लगे, जिस तरफ नाई और लकड़हारे बैठे हुये थे। जब लकड़हारे ने इतने शेरों को एक साथ देखा, तो उसके कपड़े पसीने से तर हो गये। उसके हाथ टहनी से फिसल पड़ा और वह नीचे गिरने लगा।

इस समय नाई को एक चाल सूझी। प्रत्युत्पन्नमति तो वह था ही। "पकड़ो, उन शेरों को। पकड़ो! एक को भी न भागने देना।" वह जार जोर से चिल्लाने लगा।

उसका चिल्लाना सुन और टूटी टहनियों पर से एक आदमी को गिरता देख, शेर बुरी तरह डर गये। उन्होंने न आगे देखा न पीछे। सिर पर पैर रखकर इधर उधर अन्धाधुन्ध जोर से भागने लगे। बाद में नाई पेड़ पर से उतर आया।

दोनों तब पहाड़ में शेरों की गुफाओं की तलाश में निकले। उन दोनों ने वहाँ रखे गहने, जेबरों को लेकर आपस में बाँट लिया। क्योंकि उन दोनों ने शेरों का डर दूर कर दिया था, इसलिये उन्हें बुलाकर राजा ने इनाम दिया।

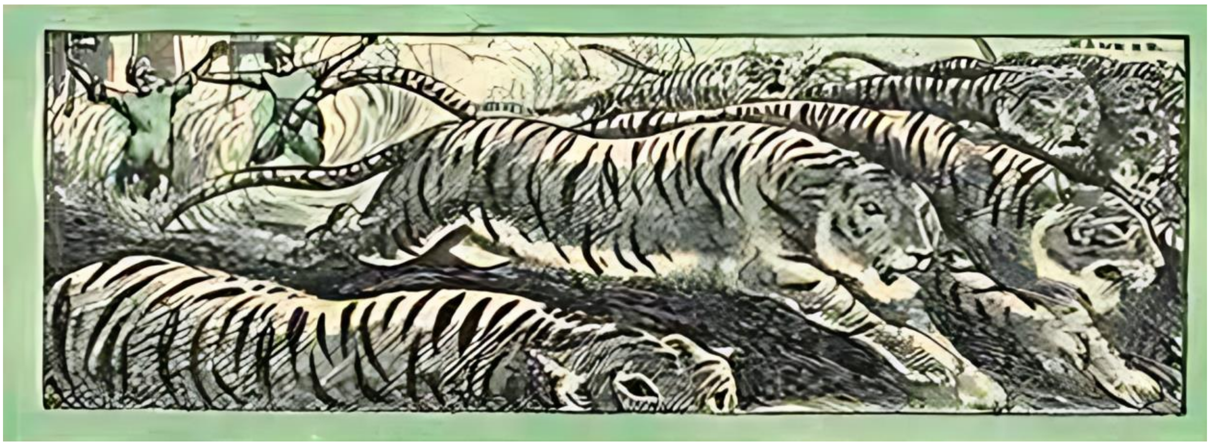

पहिले कभी रूस में मार्का नाम का एक रईस रहा करता था। उसके सरीखा लोभी संसार में शायद कोई नहीं था। लोगों का कम से कम यही ख्याल था। जब वह एक बार गली में जा रहा था, तो एक बूढ़े ने सामने आकर पूछा-"दो पैसे दीजिये, बाबू !"

मार्का ने भिखारी के रोने को तो नहीं सुना, पर उसने यह देखा कि एक गरीब किसान ने, जो उसके पीछे चला आ रहा था, जेब में से दो पैसे निकालकर उसको दे दिये और वह उसके आगे जा रहा था।

यह देख मार्का शर्मिन्दा हुआ। उसने रुककर किसान से कहा-"देखना जरा ! मेरे पास इस समय टूटे पैसे नहीं हैं। भिखारी को दो पैसे देने हैं। क्या तू दो पैसे उधार दे सकेगा? यह तो तुझे मालूम ही है कि मैं कौन हूँ?"

मार्का को दो पैसे देते हुये गरीब किसान ने कहा-"अच्छा हुजूर! तो दो पैसे लेने के लिये मैं कब आपके यहाँ हाजिर होऊँ?"

"कल आना।" मार्का ने कहा। अगले दिन गरीब किसान मार्का के घर गया। उसको देखते ही मार्का ने कहा-"दो पैसे के लिये आया है? मेरे पास इस वक्त भी टूटे पैसे नहीं है। कल आना।"

अगले दिन वह गरीब किसान फिर गया। "अरे हाँ ! तू आ तो गया, पर मेरे पास अब भी टूटे पैसे नहीं हैं। अच्छा तो एक काम कर। देख ! ते पास निन्यानवे रुपये, साढ़े पन्द्रह आने हो तो दे। तब मैं तुरन्त सौ रुपये का नोट दे दूँगा।" मार्का ने कहा।

श्री विजयकुमार श्रीवास्तव

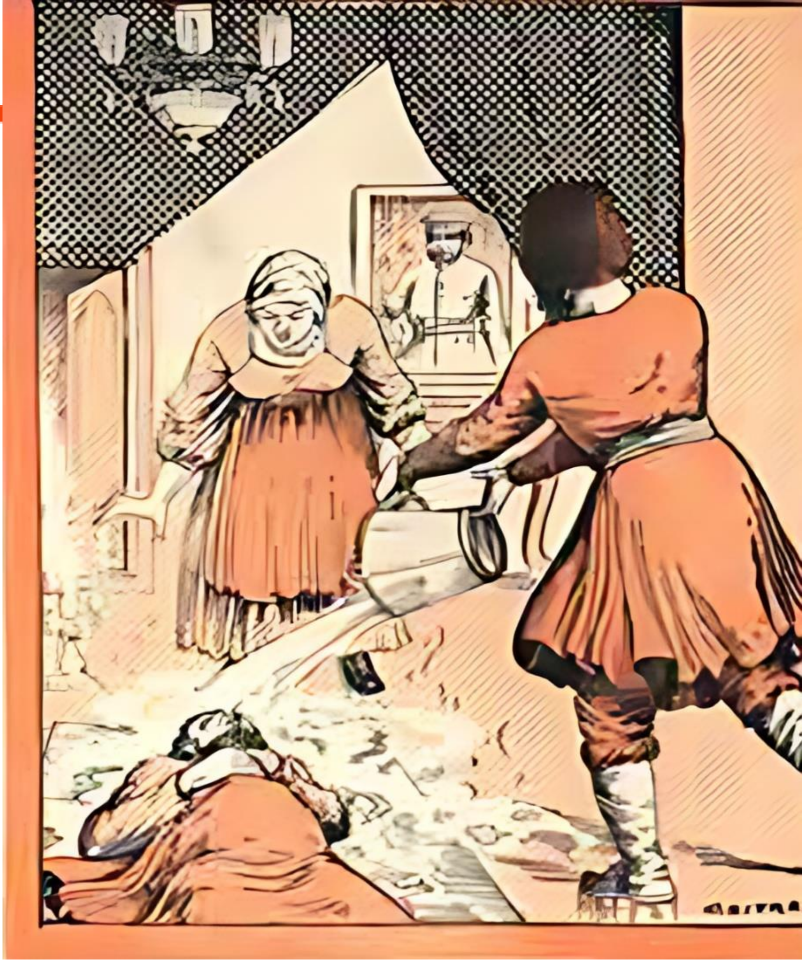

गरीब किसान ने कहा कि उसके पास उतना पैसा नहीं है।

"ऐसी बात है तो दो हफ्ते बाद दिखाई देना।" मार्का ने कहा।

गरीब किसान फिर दो सप्ताह बाद उसके पास पहुँचा। उसको कुछ फासले पर देख मार्का ने अपनी पत्नी से कहा-"देख, मैं चटाई पर लेट जाता हूँ। मेरे सिर पर कपड़ा ढाँप दे, और सिरहाने दिया जला दे। मेरे लिये गरीब किसान आ रहा है। उससे कह देना कि मैं सवेरे मर गया था। उससे इस तरह पिण्ड छूटेगा।" मार्का ने जो कुछ कहा, पत्नी ने कर दिखाया। जब गरीब किसान आया, तो उसने कहा-"तेरी याद करते करते ही गुज़र गये।"

"जाते जाते, वह मेरा कर्ज लेता ही गया। मगर अब क्या किया जाय? खर्च में थोड़ा खर्च और ही सही। उसका अन्त्येष्टि संस्कार मैं ही करा दूँगा। शव को स्नान कराना है।" किसान ने कहा। वह आङ्गन में गया, और बाल्टी में उबलता हुआ पानी ले आया। पानी को मार्का पर उड़ेल दिया। मार्का ने जलन के मारे पैर हिलाये।

"पैर हिलाने से काम नहीं चलेगा। कम से कम अब मेरे दो पैसे वापिस दोगे कि नहीं?" गरीब किसान ने पूछा। मार्का ने कोई जबाब नहीं दिया। "शव ले जाने के लिये ताबूत तो मँगाइये।" किसान ने कहा। मार्का की पत्नी ने बिना चूँ चाँ किये, ताबूत मँगाया। किसान ने मार्का को ताबूत में रखा और गिरजे में ले गया। रात तक स्नान आदि कराता हुआ, वह वहीं रहा।

आधी रात के करीब गिरजे में चोर आये। उनकी आहट सुनकर किसान एक मूर्ति के

पीछे छुप गया। चोर कहीं से जवाहरात, पैसे बगैरह चुरा लाये थे। वे आपस में बँटवारा कर रहे थे। सब कुछ तो उन्होंने बाँट लिया, पर एक तलवार रह गई, जिसकी मुठिया सोने की बनी हुई थी।

चोर यह तय न कर पाये कि उसको कौन लें। वे झगड़ने लगे।

तलवार को लेकर तुम क्यों लड़ते हो? इस तलवार से जो इस ताबूत में रखे शव का गला काट सकेगा, तलवार उसी की है।" गरीब किसान ने मूर्ति के पीछे से कहा।

यह बात सुनते ही मार्का के प्राण पखेरू उड़ गए। "अरे बाप रे बाप! मेरा गला !" वह जोर से चिल्लाया। यह देख चोर घबरा गये। वे धन को छोड़-छाड़, प्राण बचा, वहाँ से जा भागे। किसान मूर्ति के पीछे से बाहर आया।

"देखो भाई, जो हो गया सो हो गया। हम और तुम झगड़कर क्या करेंगे? हमारे भाग्य अच्छे हैं, तभी तो हमें इतना रुपया-पैसा मुफ्त मिल रहा है। आओ बिना किसी तीसरे आदमी के जाने, आपस में बराबर बराबर बाँट लें।" मार्का ने गरीब किसान से कहा।

गरीब किसान मान गया। चोरों की छोड़ी हुई धन राशि को उन्होंने आपस में बराबर बाँट लिया।

"आओ, अब चलें !" मार्का ने कहा। "तो फिर मेर दो पैसे के बारे में क्या कहते हो?" गरीब किसान ने पूछा।

"तुम देख ही तो रहे हो? मेरे पास टूटे पैसे कहाँ है ? कल जरूर आना, दे दूँगा।" मार्का ने कहा।

कल कल करके बहुत दिन गुज़र गये। पर मार्का ने गरीब किसान को दो पैसे वापिस न दिये।

भुवनगिरि में दो भाई रहा करते थे। दोनों का विवाह हो गया था। बड़े भाई ने गरीब घराने में शादी की थी। छोटे भाई का एक रईस की लड़की से विवाह हुआ था। इस कारण उनकी पत्नियों में कभी न बनती थी। जब जेठानी कहा करती-"मैं बड़ी हूँ, इसलिये तुम्हें मेरी बात सुननी चाहिये", तब छोटे भाई की पत्नी कहती-"मैं रईस घराने की हूँ, इसलिये तुम्हें मेरी बात पर चलना चाहिये।"

जब पत्नियों में तीन छः का रिश्ता रहता, तो भला भाई भी कैसे चैन से रहते? उन दोनों में भी बँटवारा हो गया। परन्तु बड़े भाई की हालत जल्दी ही गरीबी के कारण खराब हो गयी। क्योंकि उसके बाल-बच्चे अधिक हो गये थे, और साथ साथ खर्च भी बढ़ते गये थे। परन्तु छोटे भाई के भाग चमक उठे। उसके हाथ में मिट्टी भी सोना हो जाती।

एक बार बड़े भाई ने छोटे भाई के पास आकर कहा-"खेत में हल चलाना है। जरा तुम अपने बैल दे सकोगे?"

"आज एक जोड़ी ले जाना, कल दुसरी ले जाना। बैलों को पीटना पाटना नहीं, जरा सम्भल कर। बैल खेत में ही हैं। कहना कि मैंने कह दिया है, और बैल ले जाना।" छोटे भाई ने कहा।

जब बड़ा भाई खेत में गया, तो उसको आश्चर्य हुआ। भाई के बैलों को जोतकर कोई हल चला रहा था।

"यह मेरे भाई की ज़नीन है। तुम कौन हो ? क्यों यहाँ हल जोत रहे हो?" बड़े भाई ने पूछा।

श्री सुरेशचन्द्र बागड़ी

क्या तुझे नहीं मालूम मैं तेरे छोटे भाई का 'भाग्य' हूँ। इसीलिये जब तेरा भाई आराम से बैठा है, मैं उसके खेत में हल चला रहा हूँ।" उसने कहा।

"तब मेरा 'भाग्य' क्या हुआ ?" भाई ने पूछा।

"उसका क्या कहना है? वह तो आलसी है। देख, वह पेड़ के पीछे पड़ा सो रहा है। इसीलिये तेरी यह हालत है।" छोटे भाई के भाग्य ने कहा।

"तो यह इसकी करतूत है?" कहते हुये उसने इमली की पतली बेंत उठाई और खौलता हुआ, पेड़ के पीछे गया, और मजे में सोते हुये अपने "भाग्य" को देखा।

जब दो वेतें लगीं, तो भाग्य उठ खड़ा हुआ-"मुझे क्यों फिजूल पीट रहा है? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है?"

"और क्या करूँगा? जब तेरा साथी; मेरे भाई का भाग्य, हल जीत रहा है, तो तू आराम से यहाँ पड़ा सो रहा है?" बड़े भाई ने फिर बेंत उठाई।

"ठहर ठहर! मुझे खेती करना बिल्कुल नहीं आता। व्यापार की बात कर और तब देखना मेरी करामात।" भाग्य ने कहा।

"व्यापार पर मेरे पास पूँजी कहाँ है? मैं भला क्या व्यापार कर सकता हूँ?" भाई ने कहा।

"जब मैं तेरे साथ हूँ, तो पूँजी की क्या ज़रूरत है? पुराने कपड़ों का व्यापार करना, या मिट्टी का व्यापार, चाहे जो भी व्यापार कर, तू देखेगा कि घर में लक्ष्मी नाचेगी। तू अपना बोरिया-बिस्तरा बाँध और शहर चल पड़।" भाग्य ने कहा।

जब भाई शहर की ओर जा रहा था तो उसके घर की छत पर से किसी के रोने की आवाज़ आई। भाई ने सिर

उठाकर देखा, तो कोई भौंड़ी, बदसूरत बूढ़ी औरत छत से लटक रही थी।

"तुम कौन हो तुम क्यों रो रही हो? यहाँ कब आई थी?" भाई ने पूछा।

"अरे बाप रे बाप! मैं शुरू से ही इस घर में आश्रय लिये हुये हूँ। मैं तुम्हारा 'दुर्भाग्य' हूँ। अब तक मेरी अच्छी गुजर हो गई थी। क्या तुम मुझे छोड़ कर जाओगे?" वह बुढ़िया जोर से रोने लगी।

"अरे तू है मौसी? अगर तू हमारे साथ नहीं आयेगी, तो भला हमें क्या सूझेगा? आ, इस सन्दूक में बैठ, साथ ले जाऊँगा।" उसने सन्दूक खाली कर दिया और 'दुर्भाग्य' सन्दुक में आराम से बैठ गया। उसने सन्दूक बन्द कर ताला लगा दिया। आङ्गन में एक गढ़ा खोदा और उसमें सन्दूक रखकर कहा- "हमेशा, यहीं पड़ा रह। अगर तू ने फिर दिखाई दिया, तो तेरी चनड़ी उखाड़ दूँगा।" पत्नी और बाल बच्चों के साथ वह शहर चला गया।

शहर में वह पुराने कपड़े बेचने लगा। भाग्य ने साथ दिया और पुराने कपड़ों के दाम बढ़ गये। जो धन पुराने कपड़ों के बेचने से मिला, उसे नये कपड़ों को खरीदने में लगाया, और उसे बेचकर उसने अच्छा पैसा बनाया। देखते देखते वह रईस हो गया।

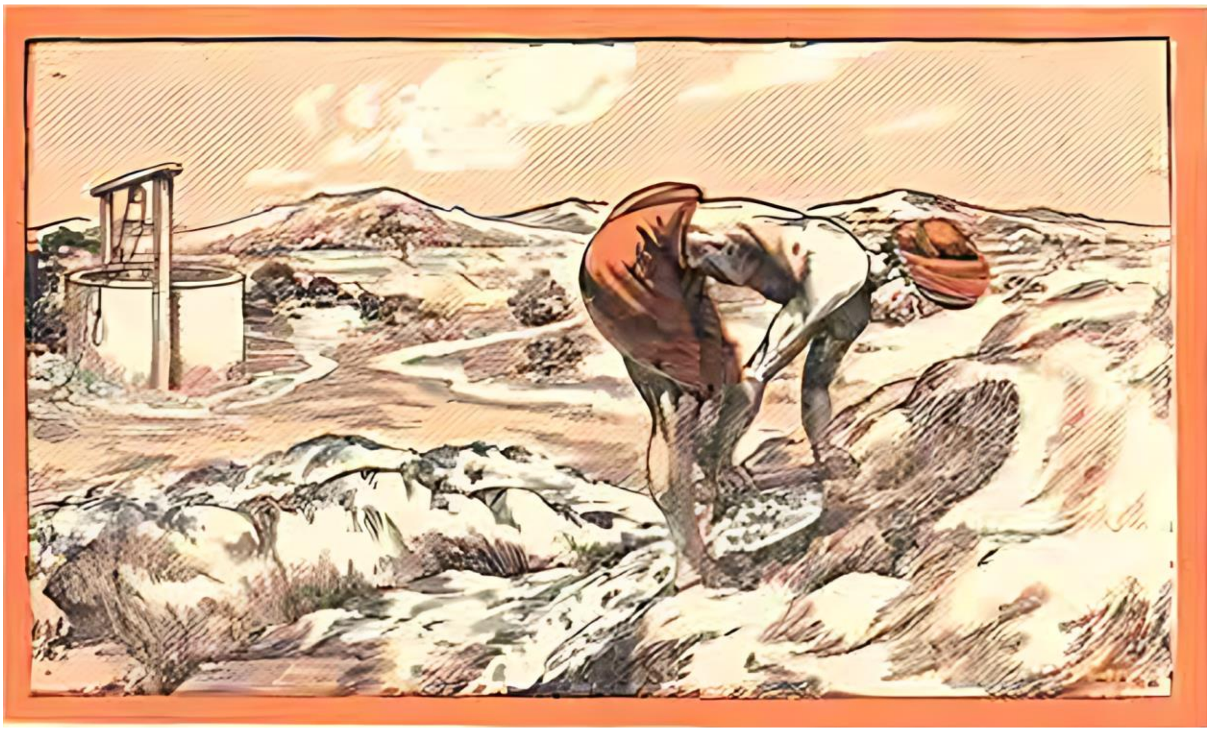

जब छोटे भाई ने सुना कि बड़ा माई धनी हो गया है, तो वह उसको देखने गया।

"भाई! तुमने इतने थोड़े समय में इतना पैसा कैसे कमाया?" भाई ने कहा।

"इसमें क्या रखा है? मेरे घर में "दुर्भाग्य' छत से लटक रहा था। उसको मैंने पकड़ लिया, और सन्दूक में रख, आङ्गन में कुएँ के पास गढ़ा खोदकर दबा दिया। तब से भाग्य मेरा साथ दे रहा है।" बड़े भाई ने कहा।

बड़े भाई के वैभव, सौभाग्य को देखकर छोटा भाई जल उठा। वह भाई के घर गया, और सन्दूक को गढ़े में से निकालकर ताला तोड़ा, और 'दुर्भाग्य' को बाहर निकाला। सन्दूक के खोलते ही 'दुर्भाग्य' ने कहा-"आ गये बेटा!" वह छोटे भाई के कन्धे पर जा बैठा।

"मैं तेरा बेटा नहीं हूँ। उतर, उत्तर। मेरा भाई शहर में है।" छोटा भाई उसके सामने गिड़गिड़ाने लगा।

"उस अभागे का नाम मेरे सामने मत ले। तू ही अच्छा है। तेरा कितना अच्छा दिल है। तुझ में कितनी दया है। मैं हमेशा तेरे पास ही रहूँगा।" दुर्भाग्य ने कहा।

बड़े भाई की अच्छी हालत देख ईर्ष्या करने के कारण उनको अच्छी सजा मिली। वह अपने कन्धे पर से 'दुर्भाग्य' को न उतार सका। वह उससे अपना पिण्ड न छुड़ा सका। जल्दी ही उसकी सारी जमीन-जायदाद बरबाद हो गई। जब वह समुराल गया, तो वहाँ लोगों ने उसकी परवाह न की। कुछ दिनों बाद वह बिना किसी को कहे, बैरागी बनकर कहीं चला गया।

CHANDAMAMA (Hindi) APRIL 1955 Regd. No. M. 8452

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – ५